विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि
महोत्सव के उपलक्ष्य में सप्तम खण्ड

अभिधान राजेन्द्र कोष में,

सूक्ति-सुधारस

सप्तम खण्ड

दिव्याशीष प्रदाता :
परम पूज्य, परम कृपालु, विश्वपूज्य
प्रभुश्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा.

आशीषप्रदाता :
राष्ट्रसन्त वर्तमानाचार्यदेवेश
श्रीमद्विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा.

प्रेरिका :
प. पू. वयोवृद्धा सरलस्वभाविनी
साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

लेखिका :
साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)
साध्वी डॉ. सुदर्शनाश्री,
(एम. ए. पीएच-डी.)

सुकृत सहयोगी

१. पू. पिताश्री स्व. शा. पेराजमलजी रतनपुरा बोहरा एवं पू. मातुश्री स्व. श्रीमती मेतीदेवी की पुण्य स्मृति में, श्रीमान् मांगीलालजी, श्री घेवरचंदजी, श्री मनोहरमलजी, श्री सुमेरमलजी, श्री जयन्तिलालजी निवासी मोदरा (राज.) हाल मुकाम. गुंटुर (आ.प्र.) ।

२. श्रीमान् शा. हस्तीमलजी, श्री पारसमलजी, श्री कान्तिलालजी, श्री उत्तमकुमारजी बेटापोता शा. फूलचंदजी चेनाजी कांकरिया निवासी चूरा (सूरा) राजस्थान (शा. हीराचंद बाबूलाल, बैंग्लोर) ।

३. श्रीमान् शा. जयसिंहजी, चन्द्र केशरसिंहजी, गौतमसिंहजी प्रिन्स, राणु, रौनक करनावट निवासी मदनगंज-किशनगढ़ (राज.) ।

प्राप्ति स्थान

श्री मदनराजजी जैन

द्वारा – शा. देवीचन्दजी छगनलालजी

आधुनिक वस्त्र विक्रेता

सदर बाजार, भीनमाल-३४३०२९

फोन : (०२९६९) २०१३२

प्रथम आवृत्ति

वीर सम्वत् : २५२५

राजेन्द्र सम्वत् : ९२

विक्रम सम्वत् : २०५५

ईस्वी सन् : १९९८

मूल्य : ५०-००

प्रतियाँ : २०००

अक्षराङ्कन

लेखित

१०, रूपमाधुरी सोसायटी, माणेकबाग, अहमदाबाद-१५

मुद्रण

सर्वोदय ओफसेट

प्रेमदरवाजा बहार, अहमदाबाद.

अनुक्रम

कहाँ क्या ?



विश्वपू[illegible]णीय

[illegible] श्रीमद्विजय [illegible]सूरीश्वरजी म. [illegible]



सन्त आचार्य

न्तसेन सूरीश्व



परम पूज्या सरलस्वभाविनी साध्वीरत्ना
श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा.

1

समर्पण

रवि-प्रभा सम है मुखश्री, चन्द्र सम अति प्रशान्त ।
तिमिर में भटके जनके, दीप उज्जवल कान्त ॥ १ ॥

लघुता में प्रभुता भरी, विश्व-पूज्य मुनीन्द्र ।
करुणा सागर आप थे, यति के बने यतीन्द्र ॥ २ ॥

लोक-मंगली थे कमल, योगीश्वर गुरुराज ।
सुमन-माल सुन्दर सजी, करे समर्पण आज ॥ ३ ॥

अभिधान राजेन्द्र कोष, रचना रची ललाम ।
नित चरणों में आपके, विधियुत् करें प्रणाम ॥ ४ ॥

काव्य-शिल्प समझें नहीं, फिर भी किया प्रयास ।
गुरु-कृपा से यह बने, जन-मन का विश्वास ॥ ५ ॥

प्रियदर्शना की दर्शना, सुदर्शना भी साथ ।
राज रहे राजेन्द्र का, चरण झुकाते माथ ॥ ६ ॥

- श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
- श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

साध्वी सुदर्शनाश्री

शुभाकांक्षा

विश्वविश्रुत है

श्री अभिधान राजेन्द्र कोष ।

विश्व की आश्चर्यकारक घटना है ।

साधन दुर्लभ समय में इतना सारा संगठन, संकलन अपने आप में एक अलौकिक सा प्रतीत होता है । रचनाकार निर्माता ने वर्षों तक इस कोष प्रणयन का चिन्तन किया, मनोयोगपूर्वक मनन किया, पश्चात् इस भगीरथ कार्य को संपादित करने का समायोजन किया ।

महामंत्र नवकार की अगाध शक्ति ! कौन कह सकता है शब्दों में उसकी शक्ति को । उस महामंत्र में उनकी थी परम श्रद्धा सह अनुरक्ति एवं सम्पूर्ण समर्पण के साथ उनकी थी परम भक्ति!

इस त्रिवेणी संगम से संकल्प साकार हुआ एवं शुभारंभ भी हो गया । १४ वर्षों की सतत साधना के बाद निर्मित हुआ यह अभिधान राजेन्द्र कोष।

इसमें समाया है सम्पूर्ण जैन वाङ्मय या यों कहें कि जैन वाङ्मय का प्रतिनिधित्व करता है यह कोष। अंगोपांग से लेकर मूल, प्रकीर्णक, छेद ग्रन्थों के सन्दर्भों से समलंकृत है यह विराट्काय ग्रन्थ ।

इस बृहद् विश्वकोष के निर्माता हैं परम योगीन्द्र सरस्वती पुत्र, समर्थ शासनप्रभावक , सत्क्रिया पालक, शिथिलाचार उन्मूलक, शुद्धसनातन सन्मार्ग प्रदर्शक जैनाचार्य विश्वपूज्य प्रातः स्मरणीय प्रभु श्रीमद् विजय राजेन्द्र सूरीश्वरजी महाराजा !

सागर में रत्नों की न्यूनता नहीं । 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' यह कोष भी सागर है जो गहरा है, अथाह है और अपार है । यह ज्ञान सिंधु नाना प्रकार की सूक्ति रत्नों का भंडार है ।

इस ग्रन्थराज ने जिज्ञासुओं की जिज्ञासा शान्त की। मनीषियों की मनीषा में अभिवृद्धि की ।

इस महासागर में मुक्ताओं की कमी नहीं । सूक्तियों की श्रेणिबद्ध पंक्तियाँ प्रतीत होती हैं ।

प्रस्तुत पुस्तक है जन-जन के सम्मुख 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड)।

मेरी आज्ञानुवर्तिनी विदुषी सुसाध्वी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं सुसाध्वीश्री डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने अपनी गुरुभक्ति को प्रदर्शित किया है इस 'सूक्ति-सुधारस' को आलेखित करके। गुरुदेव के प्रति संपूर्ण समर्पित उनके भाव ने ही यह अनूठा उपहार पाठकों के सम्मुख रखने को प्रोत्साहित किया है उनको।

यह 'सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) जिज्ञासु जनों के लिए अत्यन्त ही सुन्दर है। 'गागर में सागर है'। गुरुदेव की अमर कृति कालजयी कृति है, जो उनकी उत्कृष्ट त्याग भावना की सतत अप्रमत्त स्थिति को उजागर करनेवाली कृति है। निरन्तर ज्ञान-ध्यान में लीन रहकर तपोधनी गुरुदेवश्री 'महतो महियान्' पद पर प्रतिष्ठित हो गए हैं; उन्हें कषायों पर विजयश्री प्राप्त करने में बड़ी सफलता मिली और वे बीसवीं शताब्दि के सदा के लिए संस्मरणीय परमश्रेष्ठ पुरुष बन गए हैं।

प्रस्तुत कृति की लेखिका डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी अभिनन्दन की पात्रा हैं, जो अहर्निश 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के गहरे सागरमें गोते लगाती रहती हैं। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पेठ' की उक्ति के अनुसार श्रम, समय, मन-मस्तिष्क सभी को सार्थक किया है श्रमणी द्वयने।

मेरी ओर से हार्दिक अभिनंदन के साथ खूब-खूब बधाई इस कृति की लेखिका साध्वीद्वय को। वृद्धि हो उनकी इस प्रवृत्ति में, यही आकांक्षा।

राजेन्द्र सूरि जैन ज्ञानमंदिर — *- विजय जयन्तसेन सूरि*

अहमदाबाद

दि. २९-४-९८ अक्षय तृतीया

3

मंगल कामना

विदुषी डॉ. साध्वीश्री प्रिय-सुदर्शनाश्रीजीम. आदि,

अनुवंदना सुखसाता ।

आपके द्वारा प्रेषित 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) एवं 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' की पाण्डुलिपियाँ मिली हैं । पुस्तकें सुंदर हैं । आपकी श्रुत भक्ति अनुमोदनीय है । आपका यह लेखनश्रम अनेक व्यक्तियों के लिये चित्त के विश्राम का कारण बनेगा, ऐसा मैं मानता हूँ । आगमिक साहित्य के चिंतन स्वाध्याय में आपका साहित्य मददगार बनेगा।

उत्तरोत्तर साहित्य क्षेत्र में आपका योगदान मिलता रहे, यही मंगल कामना करता हूँ ।

उदयपुर
14-5-98

पद्मसागरसूरि
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
कोबा-382009 (गुज.)

4

रस-पूर्ति

जिनशासन में स्वाध्याय का महत्त्व सर्वाधिक है। जैसे देह प्राणों पर आधारित है वैसे ही जिनशासन स्वाध्याय पर। आचार-प्रधान ग्रन्थों में साधु के लिए पन्द्रह घंटे स्वाध्याय का विधान है। निद्रा, आहार, विहार एवं निहार का जो समय है वह भी स्वाध्याय की व्यवस्था को सुरक्षित रखने के लिए है अर्थात् जीवन पूर्ण रूप से स्वाध्यायमय ही होना चाहिए ऐसा जिनशासन का उद्घोष है। वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा इन पाँच प्रभेदों से स्वाध्याय के स्वरूप को दर्शाया गया है, इनका क्रम व्यवस्थित एवं व्यावहारिक है।

श्रमण जीवन एवं स्वाध्याय ये दोनों-दूध में शक्कर की मीठास के समान एकमेक हैं। वास्तविक श्रमण का जीवन स्वाध्यायमय ही होता है। क्षमाश्रमण का अर्थ है 'क्षमा के लिए श्रम रत' और क्षमा की उपलब्धि स्वाध्याय से ही प्राप्त होती है। स्वाध्याय हीन श्रमण क्षमाश्रमण हो ही नहीं सकता। श्रमण वर्ग आज स्वाध्याय रत हैं और उसके प्रतिफल रूप में अनेक साधु-साध्वी आगमज्ञ बने हैं।

प्रातःस्मरणीय विश्व पूज्य श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा ने अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भागों का निर्माण कर स्वाध्याय का सुफल विश्व को भेंट किया है।

उन सात भागों का मनन चिन्तन कर विदुषी साध्वीरत्नाश्री महाप्रभाश्रीजीम. की विनयरत्ना साध्वीजी श्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी ने " अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" को सात खण्डों में निर्मित किया हैं जो आगमों के अनेक रहस्यों के मर्म से ओतप्रोत हैं।

साध्वी द्वय सतत स्वाध्याय मग्ना हैं, इन्हें अध्ययन एवं अध्यापन का इतना रस है कि कभी-कभी आहार की भी आवश्यकता नहीं रहती। अध्ययन-अध्यापन का रस ऐसा है कि जो आहार के रस की भी पूर्ति कर देता है।

'सूक्ति सुधारस' (१ से ७ खण्ड) के माध्यम से इन्होंने प्रवचनसेवा, दादागुरुदेव श्रीमद्विजय राजेन्द्रसूरीश्वरजी महाराजा के वचनों की सेवा, तथा संघ-सेवा का अनुपम कार्य किया है।

'सूक्ति सुधारस' में क्या है ? यह तो यह पुस्तक स्वयं दर्शा रही है। पाठक गण इसमें दर्शित पथ पर चलना प्रारंभ करेंगे तो कषाय परिणति का ह्रास होकर गुणश्रेणी पर आरोहण कर अति शीघ्र मुक्ति सुख के उपभोक्ता बनेंगे; यह निस्संदेह सत्य है ।

साध्वी द्वय द्वारा लिखित ये 'सात खण्ड' भव्यात्मा के मिथ्यात्वमल को दूर करने में एवं सम्यग्दर्शन प्राप्त करवाने में सहायक बनें, यही अंतराभिलाषा.

भीनमाल

वि. संवत् २०५५, वैशाख वदि १० *मुनि जयानंद*

5

पुरोवाक्

लगभग दस वर्ष पूर्व जालोर - स्वर्णगिरितीर्थ - विश्वपूज्य की साधना स्थली पर हमनें 36 दिवसीय अखण्ड मौनपूर्वक आयम्बिल व जप के साथ आराधना की थी, उस समय हमारे हृदय-मन्दिर में विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्र सूरीश्वरजी गुरुदेव श्री की भव्यतम प्रतिमा प्रतिष्ठित हुई, जिसके दर्शन कर एक चलचित्र की तरह हमारे नयन-पट पर गुरुवर की सौम्य, प्रशान्त, करुणार्द्र और कोमल भावमुद्रा सहित मधुर मुस्कान अंकित हो गई। फिर हमें उनके एक के बाद एक अभिधान राजेन्द्र कोष के सप्त भाग दिखाई दिए और उन ग्रन्थों के पास एक दिव्य महर्षि की नयन रम्य छवि जगमगाने लगी। उनके नयन खुले और उन्होंने आशीर्वाद मुद्रा में हमें संकेत दिए! और हम चित्र लिखित-सी रह गईं। तत्पश्चात् आँखें खोली तो न तो वहाँ गुरुदेव थे और न उनका कोष। तभी से हम दोनों ने दृढ़ संकल्प किया कि हम विश्वपूज्य एवं उनके द्वारा निर्मित कोष पर कार्य करेंगी और जो कुछ भी मधु-सञ्चय होगा, वह जनता-जनार्दन को देंगी! विश्वपूज्य का सौरभ सर्वत्र फैलाएँगी। उनका वरदान हमारे समस्त ग्रन्थ-प्रणयन की आत्मा है।

16 जून, सन् 1989 के शुभ दिन 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में, 'सूक्ति-सुधारस' के लेखन -कार्य का शुभारम्भ किया।

वस्तुतः इस ग्रन्थ-प्रणयन की प्रेरणा हमें विश्वपूज्य गुरुदेवश्री की असीम कृपा-वृष्टि, दिव्याशीर्वाद, करुणा और प्रेम से ही मिली है।

'सूक्ति' शब्द सु + उक्ति इन दो शब्दों से निष्पन्न है। सु अर्थात् श्रेष्ठ और उक्ति का अर्थ है कथन। सूक्ति अर्थात् सुकथन। सुकथन जीवन को सुसंस्कृत एवं मानवीय गुणों से अलंकृत करने के लिए उपयोगी है। सैकडों दलीलें एक तरफ और एक चुटैल सुभाषित एक तरफ। सुत्तनिपात में कहा है –

'विञ्ञात सारानि सुभासितानि' [1]

सुभाषित ज्ञान के सार होते हैं। दार्शनिकों, मनीषियों, संतों, कवियों तथा साहित्यकारों ने अपने सद्ग्रन्थों में मानव को जो हितोपदेश दिया है तथा

1 सुत्तनिपात - 2/21/6

महर्षि-ज्ञानीजन अपने प्रवचनों के द्वारा जो सुवचनामृत पिलाते हैं - वह संजीवनी औषधितुल्य है ।

निःसंदेह सुभाषित, सुकथन या सूक्तियाँ उत्प्रेरक, मार्मिक, हृदयस्पर्शी, संक्षिप्त, सारगर्भित अनुभूत और कालजयी होती हैं । इसीकारण सुकथनों / सूक्तियों का विद्युत्-सा चमत्कारी प्रभाव होता है । सूक्तियों की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महर्षि वशिष्ठ ने योगवाशिष्ठ में कहा है – "महान् व्यक्तियों की सूक्तियाँ अपूर्व आनन्द देनेवाली, उत्कृष्टतर पद पर पहुँचानेवाली और मोह को पूर्णतया दूर करनेवाली होती हैं ।"[1] यही बात शब्दान्तर में आचार्य शुभचन्द्र ने ज्ञानार्णव में कही है – "मनुष्य के अन्तर्हृदय को जगाने के लिए, सत्यासत्य के निर्णय के लिए, लोक-कल्याण के लिए, विश्व-शान्ति और सम्यक् तत्त्व का बोध देने के लिए सत्पुरुषों की सूक्ति का प्रवर्तन होता है ।" [2]

सुवचनों, सुकथनों को धरती का अमृतरस कहें तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी । कालजयी सूक्तियाँ वास्तव में अमृतरस के समान चिरकाल से प्रतिष्ठित रही हैं और अमृत के सदृश ही उन्होंने संजीवनी का कार्य भी किया है । इस संजीवनी रस के सेवन मात्र से मृतवत् मूर्ख प्राणी, जिन्हें हम असल में मरे हुए कहते हैं, जीवित हो जाते हैं, प्राणवान् दिखाई देने लगते हैं । मनीषियों का कथन हैं कि जिसके पास ज्ञान है, वही जीवित है, जो अज्ञानी है वह तो मरा हुआ ही होता है । इन मृत प्राणियों को जीवित करने का अमृत महान् ग्रन्थ अभिधान-राजेन्द्र कोष में प्राप्त होगा । शिवलीलार्णव में कहा है – "जिस प्रकार बालू में पड़ा पानी वहीं सूख जाता है, उसीप्रकार संगीत भी केवल कान तक पहुँचकर सूख जाता है, किन्तु कवि की सूक्ति में ही ऐसी शक्ति है, कि वह सुगन्धयुक्त अमृत के समान हृदय के अन्तस्तल तक पहुँचकर मन को सदैव आह्लादित करती रहती है ।[3] इसीलिए 'सुभाषितों का रस अन्य रसों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है ।'[4] अमृतरस छलकाती ये सूक्तियाँ अन्तस्तल

---

1 अपूर्वाह्लाद दायिन्यः उच्चैस्तर पदाश्रयाः ।
अतिमोहापहारिण्यः सूक्तयो हि महियसाम् ॥
योगवाशिष्ठ 5/4/5

2 प्रबोधाय विवेकाय, हिताय प्रशमाय च ।
सम्यक् तत्त्वोपदेशाय, सतां सूक्ति प्रवर्तते ॥
ज्ञानार्णव

3 कर्णगतं शुष्यति कर्ण एव, संगीतकं सैकत वारिरीत्या ।
आनन्दयत्यन्तरनुप्रविष्य, सूक्ति कवे रेव सुधा सगन्धा ॥ – शिवलीलार्णव

4 नूनं सुभाषित रसोन्यः रसातिशायी – योग वाशिष्ठ 5/4/5

को स्पर्श करती हुई प्रतीत होती है। वस्तुतः जीवन को सुरभित व सुशोभित करनेवाला सुभाषित एक अनमोल रत्न है।

सुभाषित में जो माधुर्य रस होता है, उसका वर्णन करते हुए कहा है – "सुभाषित का रस इतना मधुर [मीठा] है कि उसके आगे द्राक्षा म्लानमुखी हो गई। मिश्री सूखकर पत्थर जैसी किरकिरी हो गई और सुधा भयभीत होकर स्वर्ग में चली गई।" [1]

अभिधान राजेन्द्र कोष की ये सूक्तियाँ अनुभव के 'सार' जैसी, समुद्र-मन्थन के 'अमृत' जैसी, दधि-मन्थन के 'मक्खन' जैसी और मनीषियों के आनन्ददायक 'साक्षात्कार' जैसी "देखन में छोटे लगे, घाव करे गम्भीर" की उक्ति को चरितार्थ करती हैं। इनका प्रभाव गहन हैं। ये अन्तर ज्योति जगाती हैं।

वास्तव में, अभिधान राजेन्द्र कोष एक ऐसी अमरकृति है, जो देश-विदेश में लोकप्रियता प्राप्त कर चुकी है। यह एक ऐसा विराट् शब्द-कोष है, जिसमें परम मधुर अर्धमागधी भाषा, इक्षुरस के समान पुष्टिकारक प्राकृतभाषा और अमृतवर्षिणी संस्कृत भाषा के शब्दों का सरस व सरल निरुपण हुआ है।

विश्वपूज्य परमाराध्यपाद मंगलमूर्ति गुरुदेव श्रीमद् राजेन्द्र-सूरीश्वरजी महाराजा साहेब पुरातन ऋषि परम्परा के महामुनीश्वर थे, जिनका तपोबल एवं ज्ञान-साधना अनुपम, अद्वितीय थी। इस प्रज्ञामहर्षि ने सन् 1890 में इस कोष का श्रीगणेश किया तथा सात भागों में 14 वर्षों तक अपूर्व स्वाध्याय, चिन्तन एवं साधना से सन् 1903 में परिपूर्ण किया। लोक-मङ्गल का यह कोष सुधा-सिन्धु है।

इस कोष में सूक्तियों का निरुपण-कौशल पण्डितों, दार्शनिकों और साधारण जनता-जनार्दन के लिए समान उपयोगी है।

इस कोष की महनीयता को दर्शाना सूर्य को दीपक दिखाना है।

हमने अभिधान राजेन्द्र कोष की लगभग 2700 सूक्तियों का हिन्दी सरलार्थ प्रस्तुत कृति 'सूक्ति सुधारस' के सात खण्डों में किया है।

'सूक्ति सुधारस' अर्थात् अभिधान राजेन्द्र-कोष-सिन्धु के मन्थन से निःसृत अमृत-रस से गूँथा गया शाश्वत सत्य का वह भव्य गुलदस्ता है, जिसमें 2667 सुकथनों/सूक्तियों की मुस्कराती कलियाँ खिली हुई हैं।

ऐसे विशाल और विराट् कोष-सिन्धु की सूक्ति रूपी मणि-रत्नों को

---

1 द्राक्षाम्लानमुखी जाता, शर्करा चाश्मतां गता,
सुभाषित रसस्याग्रे, सुधा भीता दिवंगता ॥

खोजना कुशल गोताखोर से सम्भव है। हम निपट अज्ञानी हैं — न तो साहित्य-विभूषा को जानती हैं, न दर्शन की गरिमा को समझती हैं और न व्याकरण की बारीकी समझती हैं, फिर भी हमने इस कोष के सात भागों की सूक्तियों को सात खण्डों में व्याख्यायित करने की बालचेष्टा की है। यह भी विश्वपूज्य के प्रति हमारी अखण्ड भक्ति के कारण।

हमारा बाल प्रयास केवल ऐसा ही है — •

वक्तुं गुणान् गुण समुद्र ! शशाङ्ककान्तान् ।
कस्ते क्षमः सुरगुरु प्रतिमोऽपि बुद्धया
कल्पान्त काल पवनोद्धत नक्र चक्रं ।
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥

हमने अपनी भुजाओं से कोष रूपी विशाल समुद्र को तैरने का प्रयास केवल विश्व-विभु परम कृपालु गुरुदेवश्री के प्रति हमारी अखण्ड श्रद्धा और प.पू. परमाराध्यपाद प्रशान्तमूर्ति कविरत्न आचार्य देवेश श्रीमद् विजय विद्याचन्द्र-सूरीश्वरजी म.सा. तत्पट्टालंकार प. पूज्यपाद साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त श्रीमद् विजय जयन्तसेनसूरीश्वरजी महाराजा साहेब की असीमकृपा तथा परम पूज्या परमोपकारिणी गुरुवर्या श्री हेतश्रीजी म.सा. एवं परम पूज्या सरलस्वभाविनी स्नेह-वात्सल्यमयी साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. सा. [हमारी सांसारिक पूज्या दादीजी] की प्रीति से किया है। जो कुछ भी इसमें हैं, वह इन्हीं पञ्चमूर्ति का प्रसाद है।

हम प्रणत हैं उन पंचमूर्ति के चरण कमलों में, जिनके स्नेह-वात्सल्य व आशीर्वचन से प्रस्तुत ग्रन्थ साकार हो सका है।

हमारी जीवन-क्यारी को सदा सींचनेवाली परम श्रद्धेया [हमारी संसारपक्षीय दादीजी] पूज्यवर्या श्री के अनन्य उपकारों को शब्दों के दायरे में बाँधने में हम असमर्थ हैं। उनके द्वारा प्राप्त अमित वात्सल्य व सहयोग से ही हमें सतत ज्ञान-ध्यान, पठन-पाठन, लेखन व स्वाध्यायादि करने में हरतरह की सुविधा रही है। आपके इन अनन्त उपकारों से हम कभी भी उऋण नहीं हो सकतीं।

हमारे पास इन गुरुजनों के प्रति आभार-प्रदर्शन करने के लिए न तो शब्द है, न कौशल है, न कला है और न ही अलंकार ! फिर भी हम इनकी करुणा, कृपा और वात्सल्य का अमृतपान कर प्रस्तुत ग्रंथ के आलेखन में सक्षम बन सकी हैं।

हम उनके पद-पद्मों में अनन्यभावेन समर्पित हैं, नतमस्तक हैं।

इसमें जो कुछ भी श्रेष्ठ और मौलिक है, उस गुरु-सत्ता के शुभाशीष का ही यह शुभ फल है ।

विश्वपूज्य प्रभु श्रीमद् राजेन्द्रसूरि शताब्दि-दशाब्दि महोत्सव के उपलक्ष्य में अभिधान राजेन्द्र कोष के सुगन्धित सुमनों से श्रद्धा-भक्ति के स्वर्णिम धागे से गूंथी यह सप्तम सुमनमाला उन्हें पहना रही हैं, विश्वपूज्य प्रभु हमारी इस नन्हीं माला को स्वीकार करें ।

हमें विश्वास है यह श्रद्धा-भक्ति-सुमन जन-जीवन को धर्म, नीति-दर्शन-ज्ञान-आचार, राष्ट्रधर्म, आरोग्य, उपदेश, विनय-विवेक, नम्रता, तप-संयम, सन्तोष-सदाचार, क्षमा, दया, करुणा, अहिंसा-सत्य आदि की सौरभ से महकाता रहेगा और हमारे तथा जन-जन के आस्था के केन्द्र विश्वपूज्य की यशः सुरभि समस्त जगत् में फैलाता रहेगा ।

इस ग्रन्थ में त्रुटियाँ होना स्वाभाविक ही है, क्योंकि हर मानव कृति में कुछ न कुछ त्रुटियाँ रह ही जाती हैं । इसीलिए लेनिन ने ठीक ही कहा है : **त्रुटियाँ तो केवल उसी से नहीं होगी जो कभी कोई काम करे ही नहीं ।**

गच्छतः स्खलनं क्वापि, भवत्येव प्रमादतः ।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र, समादधति सज्जनाः ॥

- श्री राजेन्द्रगुणगीतवेणु
- श्री राजेन्द्रपदपद्मरेणु

डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.
डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.-डी.

आभार

हम परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् जयन्तसेन सूरीश्वरजी म. सा. "मधुकर", परम पूज्य राष्ट्रसन्त आचार्यदेव श्रीमद् पद्मसागर सूरीश्वरजी म. सा. एवं प. पू. मुनिप्रवर श्री जयानन्द विजयजी म. सा. के चरण कमलों में वंदना करती हैं, जिन्होंने असीम कृपा करके अपने मन्तव्य लिखकर हमें अनुगृहीत किया है। हमें उनकी शुभप्रेरणा व शुभाशीष सदा मिलती रहे, यही करबद्ध प्रार्थना है।

इसके साथ ही हमारी सुविनीत गुरुबहनें सुसाध्वीजी श्री आत्मदर्शनाश्रीजी, श्रीसम्यग्दर्शनाश्रीजी (सांसारिक सहोदरबहनें), श्री चारूदर्शनाश्रीजी एवं श्री प्रीतिदर्शनाश्रीजी (एम.ए.) की शुभकामना का सम्बल भी इस ग्रन्थ के प्रणयन में साथ रहा है। अतः उनके प्रति भी हृदय से आभारी हैं।

हम पद्म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत ब्रिटेन, विश्वविख्यात विधिवेत्ता एवं महान् साहित्यकार माननीय डॉ. श्रीमान् लक्ष्मीमल्लजी सिंघवी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हैं, जिन्होंने अति भव्य मन्तव्य लिखकर हमें प्रेरित किया है। तदर्थ हम उनके प्रति हृदय से अत्यन्त आभारी हैं।

इस अवसर पर हिन्दी-अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी सरलमना माननीय डो. श्री जवाहरचन्द्रजी पटनी का योगदान भी जीवन में कभी नहीं भुलाया जा सकता है। पिछले दो वर्षों से सतत उनकी यही प्रेरणा रही कि आप शीघ्रातिशीघ्र 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'अभिधान राजेन्द्र कोष में जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम' और 'विश्वपूज्य' (श्रीमद राजेन्द्रसूरिः जीवन-सौरभ) आदि ग्रन्थों को सम्पन्न करें। उनकी सक्रिय प्रेरणा, सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन व आत्मीयतापूर्ण सहयोग-सुझाव के कारण ही ये ग्रन्थ [1 से 10 खण्ड] यथासमय पूर्ण हो सके हैं। पटनी सा0 ने अपने अमूल्य क्षणों का सदुपयोग प्रस्तुत ग्रन्थ के अवलोकन में किया। हमने यह अनुभव किया कि देहयष्टि वार्धक्य के कारण कृश होती है, परन्तु आत्मा अजर अमर है। गीता में कहा है :

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥
कर्मयोगी का यही अमर स्वरूप है ।

हम साध्वीद्वय उनके प्रति हृदय से कृतज्ञा हैं। इतना ही नहीं, अपितु प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप अपना आमुख लिखने का कष्ट किया तदर्थ भी हम आभारी हैं।

उनके इस प्रयास के लिए हम धन्यवाद या कृतज्ञता ज्ञापन कर उनके अमूल्य श्रम का अवमूल्यन नहीं करना चाहतीं। बस, इतना ही कहेंगी कि इस सम्पूर्ण कार्य के निमित्त उन्हें ज्ञान के इस अथाह सागर में बार-बार डुबकियाँ लगाने का जो सुअवसर प्राप्त हुआ, वह उनके लिए महान् सौभाग्य है।

तत्पश्चात् अनवरत शिक्षा के क्षेत्र में सफल मार्गदर्शन देनेवाले शिक्षा गुरुजनों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना हमारा परम कर्तव्य है। बी. ए. [प्रथम खण्ड] से लेकर आजतक हमारे शोध निर्देशक माननीय डॉ. श्री अखिलेशकुमारजी राय सा. द्वारा सफल निर्देशन, सतत प्रोत्साहन एवं निरन्तर प्रेरणा को विस्मृत नहीं किया जा सकता, जिसके परिणाम स्वरूप अध्ययन के क्षेत्र में हम प्रगतिपथ पर अग्रसर हुईं। इसी कड़ी में श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान वाराणसी के निदेशक माननीय डॉ. श्री सागरमलजी जैन के द्वारा प्राप्त सहयोग को भी जीवन में कभी भी भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि पार्श्वनाथ विद्याश्रम के परिसर में सालभर रहकर हम साध्वी द्वय ने 'आचारांग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन' और 'आनन्दघन का रहस्यवाद' — इन दोनों शोध-प्रबन्ध-ग्रन्थों को पूर्ण किया था, जो पीएच.डी. की उपाधि के लिए अवधेश प्रतापसिंह विश्वविद्यालय रीवा (म.प्र) ने स्वीकृत किये। इन दोनों शोध-प्रबन्ध ग्रन्थों को पूर्ण करने में डॉ. जैन सा. का अमूल्य योगदान रहा है। इतना ही नहीं, प्रस्तुत ग्रन्थों के अनुरूप मन्तव्य लिखने का कष्ट किया। तदर्थ भी हम आभारी हैं।

इनके अतिरिक्त विश्रुत पण्डितवर्य माननीय श्रीमान् दलसुख भाई मालवणियाजी, विद्वद्वर्य डॉ. श्री नेमीचन्दजी जैन, शास्त्रसिद्धान्त रहस्यविद् ? पण्डितवर्य श्री गोविन्दरामजी व्यास, विद्वद्वर्य पं. श्री जयनन्दनजी झा, पण्डितवर्य श्री हीरालालजी शास्त्री एम.ए., हिन्दी अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध मनीषी श्री भागचन्दजी जैन, एवं डॉ. श्री अमृतलालजी गाँधी ने भी मन्तव्य लिखकर स्नेहपूर्ण उदारता दिखाई, तदर्थ हम उन सबके प्रति भी हृदय से अत्यन्त आभारी हैं।

अन्त में उन सभी का आभार मानती हैं जिनका हमें प्रत्यक्ष व परोक्ष सहकार / सहयोग मिला है।

यह कृति केवल हमारी बालचेष्टा है, अतः सुविज्ञ, उदारमना सज्जन हमारी त्रुटियों के लिए क्षमा करें।

पौष शुक्ला सप्तमी — *डॉ. प्रियदर्शनाश्री*
5 जनवरी, 1998 — *डॉ. सुदर्शनाश्री*

7

सुकृत सहयोगी

श्रुतज्ञानप्रेमी श्रेष्ठिवर्यसर्व,

श्रीमान् मांगीलालजी, घेवरचंदजी, मनोहरमलजी, सुमेरमलजी, जयन्तिलालजी रतनपुरा बोहरा निवासी मोदरा (राज.) ।

श्रीमान् हस्तीमलजी, पारसमलजी, कान्तिलालजी, उत्तमकुमारजी कांकरिया निवासी चूरा (राज.) ।

श्रीमान् जयसिंहजी, केशरसिंहजी, गौतमसिंहजी करनावट निवासी मदनगंज-किशनगढ़ (राज.) ।

धन्यवाद के पात्र हैं ये पुण्यशाली महानुभाव जिन्होंने अपनी लक्ष्मी का सदुपयोग 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (सप्तम खण्ड) के प्रकाशनार्थ किया। जो महानुभाव अपनी लक्ष्मी का सत्कार्यों में, सद्ज्ञान में, साधु-सन्तों की सेवा में, परोपकार में व्यय करते हैं; वे सदा सबके प्रियपात्र बनते हैं। 'कुमारपाल प्रतिबोध' में कहा गया है :

अणुदियहं दिंतस्स वि झिज्जंति न सायरस्स रयणाइं ।

(प्रतिदिन देते हुए भी सागर के रत्न कभी समाप्त नहीं होते ।)

आधुनिक युग की भौतिकवादी प्रवृत्ति के कारण अश्लील साहित्य का अम्बार लग रहा है, परन्तु सत्साहित्य अल्प मात्रा में प्रकाशित होता है।

सत्साहित्य ज्ञान प्रदान करता है। ज्ञान से विवेक और विवेक से सेवा, परोपकार, दान, मैत्री और प्रमोदभाव आते हैं। प्रमोद से परम शांति मिलती है।

अस्तु ! सद्ज्ञान में अपनी लक्ष्मी का सद्व्यय करनेवाले इन सभी गुरूभक्तों के प्रति हम आभार प्रकट करती हैं । परमश्रद्धेया परम पूज्या साध्वीरत्ना श्रीमहाप्रभाश्रीजी म.सा. (पू. दादीजी म.) उन्हें आशीर्वाद प्रदान करती हैं ।

हम आशा करती हैं कि वे भविष्य में भी ऐसे सुकृत्यों में सदा सहयोग देते रहेंगे । पुनः धन्यवाद एवं आभार ।

— साध्वी डॉ. प्रियदर्शनाश्री

— साध्वी डॉ. सुदर्शनाश्री

8

आमुख

– डॉ. जवाहरचन्द्र पटनी,

एम. ए. (हिन्दी-अंग्रेजी), पीएच. डी., बी.टी.

विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी विरले सन्त थे । उनके जीवन-दर्शन से यह ज्ञात होता है कि वे लोक मंगल के क्षीर-सागर थे । उनके प्रति मेरी श्रद्धा-भक्ति तब विशेष बढ़ी, जब मैंने कलिकाल कल्पतरू श्री वल्लभसूरिजी पर 'कलिकाल कल्पतरू' महाग्रन्थ का प्रणयन किया, जो पीएच. डी. उपाधि के लिए जोधपुर विश्वविद्यालय ने स्वीकृत किया । विश्वपूज्य प्रणीत 'अभिधान राजेन्द्र कोष' से मुझे बहुत सहायता मिली । उनके पुनीत पद-पद्मों में कोटिशः वन्दन !

फिर पूज्या डॉ. साध्वी द्वय श्री प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. श्री सुदर्शनाश्रीजी म. के ग्रन्थ – 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका', 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' [1 से 7 खण्ड], 'विश्वपूज्य' [श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ), 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम', 'सुगन्धित सुमन', 'जीवन की मुस्कान' एवं 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' आदि ग्रन्थों का अवलोकन किया । विदुषी साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य की तपश्चर्या, कर्मठता एवं कोमलता का जो वर्णन किया है, उससे मैं अभिभूत हो गया और मेरे सम्मुख इस भोगवादी आधुनिक युग में पुरातन ऋषि-महर्षि का विराट् और विनम्र करुणार्द्र तथा सरल, लोक-मंगल का साक्षात् रूप दिखाई दिया ।

श्री विश्वपूज्य इतने दृढ़ थे कि भयंकर झंझावातों और संघर्षों में भी अडिग रहे । सर्वज्ञ वीतराग प्रभु के परमपुनीत स्मरण से वे अपनी नन्हीं देह-किश्ती को उफनते समुद्र में निर्भय चलाते रहें । स्मरण हो आता है, परम गीतार्थ महान् आचार्य मानतुंगसूरिजी रचित महाकाव्य भक्तामर का यह अमर श्लोक –

'अम्भो निधौ क्षुभित भीषण नक्र चक्र,
पाठीन पीठ भय दोल्बण वाडवाग्नौ ।
रङ्गत्तरंग शिखर स्थित यान पात्रा –
स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥'

हे स्वामिन् ! क्षुब्ध बने हुए भयंकर मगरमच्छों के समूह और पाठीन तथा पीठ जाति के मत्स्य व भयंकर वड़वानल अग्नि जिसमें है, ऐसे समुद्र में जिनके जहाज लहरों के अग्रभाग पर स्थित हैं; ऐसे जहाजवाले लोग आपका मात्र स्मरण करने से ही भयरहित होकर निर्विघ्नरूप से इच्छित स्थान पर पहुँचते हैं ।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय ने विश्वपूज्य के विराट् और कोमल जीवन का यथार्थ वर्णन किया है । उससे यह सहज प्रतीति होती है कि विश्वपूज्य कर्मयोगी महर्षि थे, जिन्होंने उस युग में व्याप्त भ्रष्टाचार और आडम्बर को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, वन-उपवन में पैदल विहार किया । व्यसनमुक्त समाज के निर्माण में अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया ।

विदुषी लेखिकाओंने यह बताया है कि इस महर्षि ने व्यक्ति और समाज को सुसंस्कृत करने हेतु सदाचार-सुचरित्र पर बल दिया तथा सत्साहित्य द्वारा भारतीय गौरवशालिनी संस्कृति को अपनाने के लिए अभिप्रेरित किया ।

इस महर्षि ने हिन्दी में भक्तिरस-पूर्ण स्तवन, पद एवं सज्झायादि गीत लिखे हैं । जो सर्वजनहिताय, स्वान्तः सुखाय और भक्तिरस प्रधान हैं । इनकी समस्त कृतियाँ लोकमंगल की अमृत गगरियाँ हैं ।

गीतों में शास्त्रीय संगीत एवं पूजा-गीतों की लावणियाँ हैं जिनमें माधुर्य भरपूर हैं । विश्वपूज्य ने रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा एवं दृष्टान्त आदि अलंकारों का अपने काव्य में प्रयोग किया है, जो अप्रयास है । ऐसा लगता है कि कविता उनकी हृदय वीणा पर सहज ही झंकृत होती थी । उन्होंने यद्यपि स्वान्तः सुखाय गीत रचना की है, परन्तु इनमें लोकमाङ्गल्य का अमृत स्रवित होता है ।

उनके तपोमय जीवन में प्रेम और वात्सल्य की अमी-वृष्टि होती है ।

विश्वपूज्य अर्धमागधी, प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओं के अद्वितीय महापण्डित थे । उनकी अमरकृति – 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में इन तीन भाषाओं के शब्दों की सारगर्भित और वैज्ञानिक व्याख्याएँ हैं । यह केवल पण्डितवरों का ही चिन्तामणि रत्न नहीं है, अपितु जनसाधारण को भी इस अमृत-सरोवर का अमृत-पान करके परम तृप्ति का अनुभव होता है । उदाहरण के लिए – जैनधर्म में 'नीवि' और 'गहुँली' शब्द प्रचलित हैं । इन शब्दों की व्याख्या मुझे कहीं भी नहीं मिली । इन शब्दों का समाधान इस कोष में है । 'नीवि' अर्थात् नियमपालन करते हुए विधिपूर्वक आहार लेना । गहुँली गुरु-भगवंतों के शुभागमन पर मार्ग में अक्षत का स्वस्तिक करके उनकी वधामणी करते हैं और गुरुवर के प्रवचन के पश्चात् गीत द्वारा गहुँली गीत गाया जाता है । इनकी

व्युत्पत्ति-व्याख्या 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में मिलीं । पुरातनकाल में गेहूँ का स्वस्तिक करके गुरुजनों का सत्कार किया जाता था । कालान्तर में अक्षत-चावल का प्रचलन हो गया । यह शब्द योगरूढ़ हो गया, इसलिए गुरु भगवंतों के सम्मान में गाया जानेवाला गीत भी गहुँली हो गया । स्वर्ण मोहरें या रत्नों से गहुँली क्यों न हो, वह गहुँली ही कही जाती है । भाषा विज्ञान की दृष्टि से अनेक शब्द जिनवाणी की गंगोत्री में लुढ़क-लुढ़क कर, घिस-घिस कर शालिग्राम बन जाते हैं । विश्वपूज्य ने प्रत्येक शब्द के उद्गम-स्रोत की गहन व्याख्या की है । अतः यह कोष वैज्ञानिक है, साहित्यकारों एवं कवियों के लिए रसात्मक है तथा जनसाधारण के लिए शिव-प्रसाद है ।

जब कोष की बात आती है तो हमारा मस्तक हिमगिरि के समान विराट् गुरुवर के चरण-कमलों में श्रद्धावनत हो जाता है । षष्टिपूर्ति के तीन वर्ष बाद 63 वर्ष की वृद्धावस्था में विश्वपूज्य ने '**अभिधान राजेन्द्र कोष**' का श्रीगणेश किया और 14 वर्ष के अनवरत परिश्रम व लगन से 76 वर्ष की आयु में इसे परिसम्पन्न किया ।

इनके इस महत्दान का मूल्याङ्कन करते हुए मुझे महर्षि दधीचि की पौराणिक कथा का स्मरण हो आता है, जिसमें इन्द्र ने देवासुर संग्राम में देवों की हार और असुरों की जय से निराश होकर इस महर्षि से अस्थिदान की प्रार्थना की थी । सत् विजयाकांक्षा की मंगल-भावना से इस महर्षि ने अनशन तप से देह सुखाकर अस्थिदान इन्द्र को दिया था, जिससे वज्रायुध बना । इन्द्र ने वज्रायुध से असुरों को पराजित किया । इसप्रकार सत् की विजय और असत् की पराजय हुई । 'सत्यमेव जयते' का उद्घोष हुआ ।

सचमुच यह कोष वज्रायुध के समान सत्य की रक्षा करनेवाला और असत्य का विध्वंस करनेवाला है ।

विदुषी साध्वी द्वय ने इस महाग्रन्थ का मन्थन करके जो अमृत प्राप्त किया है, वह जनता-जनार्दन को समर्पित कर दिया है ।

सारांश में - यह ग्रन्थ 'सत्यं-शिवं-सुंदरम्' की परमोज्ज्वल ज्योति सब युगों में जगमगाता रहेगा — यावत्चन्द्रदिवाकरौ ।

इस कोष की लोकप्रियता इतनी है कि साण्डेराव ग्राम (जिला-पाली-राजस्थान) के लघु पुस्तकालय में भी इसके नवीन संस्करण के सातों भाग विद्यमान हैं । यही नहीं, भारत के समस्त विश्वविद्यालयों, श्रेष्ठ महाविद्यालयों तथा पाश्चात्त्य देशों के विद्या-संस्थानों में ये उपलब्ध हैं । इनके बिना विश्वविद्यालय और शोध-संस्थान रिक्त लगते हैं ।

विदुषी साध्वी द्वय निःसंदेह यशोपात्रा हैं, क्योंकि उन्होंने विश्वपूज्य के पाण्डित्य को ही अपने ग्रन्थों में नहीं दर्शाया है; अपितु इनके लोक-माङ्गल्य का भी प्रशस्त वर्णन किया है ।

ये महान् कर्मयोगी पत्थरों में फूल खिलाते हुए, मरूभूमि में गंगा-जमुना की पावन धाराएँ प्रवाहित करते हुए, बिखरे हुए समाज को कलह के काँटों से बाहर निकाल कर प्रेम-सूत्र में बाँधते हुए, पीड़ित प्राणियों की वेदना मिटाते हुए, पर्यावरण - शुद्धि के लिए आत्म-जागृति का पाञ्चजन्य शंख बजाते हुए ८० वर्ष की आयु में प्रभु शरण में कल्पपुष्प के समान समर्पित हो गए ।

श्री वाल्मीकि ने रामायण में यह बताया है कि भगवान् राम ने 14 वर्षों के वनवास काल में अछूतों का उद्धार किया, दुःखी-पीड़ित प्राणियों को जीवन-दान दिया, असुर प्रवृत्ति का नाश किया और प्राणि-मैत्री की रसवन्ती गंगधारा प्रवाहित की । इस कालजयी युगवीर आचार्य ने इसीलिए 14 वर्ष कोष की रचना में लगाये होंगे । 14 वर्ष शुभ काल है – मंगल विधायक है । महर्षियों के रहस्य को महर्षि ही जानते हैं ।

लाखों-करोड़ों मनुष्यों का प्रकाश-दीप बुझ गया, परन्तु वह बुझा नहीं है । वह समस्त जगत् के जन-मानसों में करूणा और प्रेम के रूप में प्रदीप्त हैं ।

विदुषी साध्वी द्वय के ग्रन्थों को पढ़कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि विश्वपूज्य केवल त्रिस्तुतिक आम्नाय के ही जैनाचार्य नहीं थे, अपितु समस्त जैन समाज के गौरव किरीट थे, वे हिन्दुओं के सन्त थे, मुसलमानों के फकीर और ईसाइयों के पादरी । वे जगद्गुरु थे । विश्वपूज्य थे और हैं ।

विदुषी डॉ. साध्वी द्वय की भाषा-शैली वसन्त की परिमल के समान मनोहारिणी है । भावों को कल्पना और अलंकारों से इक्षुरस के समान मधुर बना दिया है । समरसता ऐसी है जैसे – सुरसरि का प्रवाह ।

दर्शन की गम्भीरता भी सहज और सरल भाषा-शैली से सरस बन गयी है ।

इन विदुषी साध्वियों के मंगल-प्रसाद से समाज सुसंस्कारों के प्रशस्त-पथ पर अग्रसर होगा । भविष्य में भी ये साध्वियाँ तृष्णा तृषित आधुनिक युग को अपने जीवन-दर्शन एवं सत्साहित्य के सुगन्धित सुमनों से महकाती रहेंगी ! यही शुभेच्छा !

पूज्या साध्वीजी द्वय को विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. की पावन प्रेरणा प्राप्त हुई, इससे इन्होंने इन अभिनव ग्रन्थों का प्रणयन किया ।

यह सच है कि रवि-रश्मियों के प्रताप से सरोवर में सरोज सहज ही प्रस्फुटित होते हैं। वासन्ती पवन के हलके से स्पर्श से सुमन सौरभ सहज ही प्रसृत होते हैं। ऐसी ही विश्वपूज्य के वात्सल्य की परिमल इनके ग्रन्थों को सुरभित कर रही हैं। उनकी कृपा इनके ग्रन्थों की आत्मा है।

जिन्हें महाज्ञानी साहित्यमनीषी राष्ट्रसन्त प. पू. आचार्यदेवेश श्रीमद्जयन्तसेनसूरीश्वरजी म. सा. का आर्शीवाद और परम पूज्या जीवन निर्मात्री (सांसारिक दादीजी) साध्वीरत्ना श्री महाप्रभाश्रीजी म. का अमित वात्सल्य प्राप्त हों, उनके लिए ऐसे ग्रन्थों का प्रणयन सहज और सुगम क्यों न होगा ? निश्चय ही।

वात्सल्य भाव से मुझे आमुख लिखने का आदेश दिया पूज्या साध्वी द्वय ने। उसके लिए आभारी हूँ, यद्यपि मैं इसके योग्य किञ्चित् भी नहीं हूँ। इति शुभम् !

पौष शुक्ला सप्तमी
5 जनवरी, 1998
कालन्द्री
जिला-सिरोही (राज.)

पूर्वप्राचार्य
श्री पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज,
फालना (राज.)

9

मन्तव्य

— डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

(पद्म विभूषण, पूर्व भारतीय राजदूत-ब्रिटेन)

आदरणीया डॉ. प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. सुदर्शनाजी साध्वीद्वय ने "विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ)', "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्तिसुधारस" (1 से 7 खण्ड), एवं अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" की रचना में जैन परम्परा की यशोगाथा की अमृतमय प्रशस्ति की है। ये ग्रंथ विदुषी साध्वी-द्वय की श्रद्धा, निष्ठा, शोध एवं दृष्टि-सम्पन्नता के परिचायक एवं प्रमाण हैं। एक प्रकार से इस ग्रंथत्रयी में जैन-परम्परा की आधारभूत रत्नत्रयी का प्रोज्ज्वल प्रतिबिम्ब है। युगपुरुष, प्रज्ञामहर्षि, मनीषी आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के व्यक्तित्व और कृतित्व के विराट् क्षितिज और धरातल की विहंगम छवि प्रस्तुत करते हुए साध्वी-द्वय ने इतिहास के एक शलाकापुरुष की यश-प्रतिमा की संरचना की है, उनकी अप्रतिम उपलब्धियों के ज्योतिर्मय अध्याय को प्रदीप्त और रेखांकित किया है। इन ग्रंथों की शैली साहित्यिक है, विवेचन विश्लेषणात्मक है, संप्रेषण रस-सम्पन्न एवं मनोहारी है और रेखांकन कलात्मक है।

पुण्य श्लोक प्रातःस्मरणीय आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी अपने जन्म के नाम के अनुसार ही वास्तव में 'रत्नराज' थे। अपने समय में वे जैनपरम्परा में ही नहीं बल्कि भारतीय विद्या के विश्रुत विद्वान् एवं विद्वत्ता के शिरोमणि थे। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में सागर की गहराई और पर्वत की ऊँचाई विद्यमान थी। इसीलिए उनको विश्वपूज्य के अलंकरण से विभूषित करते हुए वह अलंकरण ही अलंकृत हुआ। भारतीय वाङ्मय में "अभिधान राजेन्द्र कोष" एक अद्वितीय, विलक्षण और विराट् कीर्तिमान है जिसमें संस्कृत, प्राकृत एवं अर्धमागधी की त्रिवेणी भाषाओं और उन भाषाओं में प्राप्त विविध परम्पराओं की सूक्तियों की सरल और सांगोपांग व्याख्याएँ हैं, शब्दों का विवेचन और दार्शनिक संदर्भों की अक्षय सम्पदा है। लगभग ६० हजार शब्दों की व्याख्याओं एवं साढ़े चार लाख श्लोकों के ऐश्वर्य से महिमामंडित यह ग्रंथ जैन परम्परा एवं समग्र भारतीय विद्या का अपूर्व भंडार है। साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्री एवं डॉ. सुदर्शनाश्री की यह प्रस्तुति एक ऐसा साहसिक सारस्वत

प्रयास है जिसकी सराहना और प्रशस्ति में जितना कहा जाय वह स्वल्प ही होगा, अपर्याप्त ही माना जायगा। उनके पूर्वप्रकाशित ग्रंथ "आनंदघन का रहस्यवाद" एवं आचारांग सूत्र का नीतिशास्त्रीय अध्ययन" प्रत्यूष की तरह इन विदुषी साध्वियों की प्रतिभा की पूर्व सूचना दे रहे थे। विश्व पूज्य की अमर स्मृति में साधना के ये नव दिव्य पुष्प अरुणोदय की रश्मियों की तरह हैं।

24-4-1998
4F, White House,
10, Bhagwandas Road,
New Delhi-110001

'दो शब्द'

— पं. दलसुख मालवणिया

पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साध्वीद्वयने "अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका" एवं "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड), आदि ग्रन्थ लिखकर तैयार किए हैं, जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं गौरवमयी रचनाएँ हैं । उनका यह अथक प्रयास स्तुत्य है । साध्वीद्वय का यह कार्य उपयोगी तो है ही, तदुपरान्त जिज्ञासुजनों के लिए भी उपकारक हो, वैसा है ।

इसप्रकार जैनदर्शन की सरल और संक्षिप्त जानकारी अन्यत्र दुर्लभ है। जिज्ञासु पाठकों को जैनधर्म के सद् आचार-विचार, तप-संयम, विनय-विवेक विषयक आवश्यक ज्ञान प्राप्त हो जाय, वैसी कृतियाँ हैं ।

पूज्या साध्वीद्वय द्वारा लिखित इन कृतियों के माध्यम से मानव-समाज को जैनधर्म-दर्शन सम्बन्धी एक दिशा, एक नई चेतना प्राप्त होगी ।

ऐसे उत्तम कार्य के लिए साध्वीद्वय का जितना उपकार माना जाय, वह स्वल्प ही होगा ।

दिनांक : 30-4-98
माधुरी-8,
आपेरा सोसायटी, पालड़ी,
अहमदाबाद-380007

सूक्ति-सुधारस: मेरी दृष्टि में

— *डॉ. नेमीचन्द जैन*
संपादक "तीर्थंकर"

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' के एक से सात खण्ड तक में, मैं गोते लगा सका हूँ। आनन्दित हूँ। रस-विभोर हूँ। कवि बिहारी के दोहे की एक पंक्ति बार-बार आँखों के सामने आ-जा रही है : "बूड़े अनबूड़े, तिरे जे बूड़े सब अंग"। जो डूबे नहीं, वे डूब गये हैं और जो डूब सके हैं सिर-से-पैर तक वे तिर गये हैं। अध्यात्म, विशेषत: श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी के 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का यही आलम है। डूबिये, तिर जाएँगे; सतह पर रहिये, डूब जाएँगे।

वस्तुत: 'अभिधान राजेन्द्र कोष' का एक-एक वर्ण बहुमुखीता का धनी है। यह अप्रतिम कृति 'विश्वपूज्य' का 'विश्वकोश' (एन्सायक्लोपीडिया) है। जैसे-जैसे हम इसके तलातल का आलोड़न करते हैं, वैसे-वैसे जीवन की दिव्य छबियाँ थिरकती-ठुमकती हमारे सामने आ खड़ी होती हैं। हमारा जीवन सर्वोत्तम से संवाद बनने लगता है।

'अभिधान राजेन्द्र' में संयोगत: सम्मिलित सूक्तियाँ ऐसी सूक्तियाँ हैं, जिनमें श्रीमद् की मनीषा-स्वाति ने दुर्लभ/दीप्तिमन्त मुक्ताओं को जन्म दिया है। ये सूक्तियाँ लोक-जीवन को माँजने और उसे स्वच्छ-स्वस्थ दिशा-दृष्टि देने में अद्वितीय हैं। मुझे विश्वास है कि साध्वीद्वय का यह प्रथम पुरुषार्थ उन तमाम सूक्तियों को, जो 'अभिधान राजेन्द्र' में प्रसंगत: समाविष्ट हैं, प्रस्तुत करने में सफल होगा। मेरे विनम्र मत में यदि इनमें-से कुछेक सूक्तियों का मन्दिरों, देवालयों, स्वाध्याय-कक्षों, स्कूल-कॉलेजों की भित्तियों पर अंकन होता है तो इससे हमारी धार्मिक असंगतियों को तो एक निर्मल कायाकल्प मिलेगा ही, राष्ट्रीय चरित्र को भी नैतिक उत्थान मिलेगा। मैं न सिर्फ २६६७ सूक्तियों के ७ बृहत् खण्डों की प्रतीक्षा करूँगा, अपितु चाहूँगा कि इन सप्त सिन्धुओं के सावधान परिमन्थन से कोई 'राजेन्द्र सूक्ति नवनीत' जैसी लघुपुस्तिका सूरज की पहली किरण देखे। ताकि संतप्त मानवता के घावों पर चन्दन-लेप संभव हो।

27-04-1998
65, पत्रकार कालोनी, कनाड़िया मार्ग,
इन्दौर (म.प्र.)-452001

मन्तव्य

— डॉ. सागरमल जैन

पूर्व निर्देशक पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (१ से ७ खण्ड) नामक इस कृति का प्रणयन पूज्या साध्वीश्री डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी ने किया है। वस्तुतः यह कृति अभिधानराजेन्द्रकोष में आई हुई महत्त्वपूर्ण सूक्तियों का अनूठा आलेखन हैं। लगभग एक शताब्दि पूर्व ईस्वीसन् १८९० आश्विन शुक्ला दूज के दिन शुभ लग्न में इस कोष ग्रन्थ का प्रणयन प्रारम्भ हुआ और पूज्य आचार्य भगवन्त श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी के अथक प्रयासों से लगभग १४ वर्ष में यह पूर्ण हुआ फिर इसके प्रकाशन की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई जो पुनः १७ वर्षों में पूर्ण हुई। जैनधर्म सम्बन्धी विश्वकोषों में यह कोष ग्रन्थ आज भी सर्वोपरि स्थान रखता है। प्रस्तुत कोष में जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति और साहित्य से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण शब्दों का अकारादि क्रम से विस्तारपूर्वक विवेचन उपलब्ध होता है। इस विवेचना में लगभग शताधिक ग्रन्थों से सन्दर्भ चुने गये हैं। प्रस्तुत कृति में साध्वी-द्वय ने इसी कोषग्रन्थ को आधार बनाकर सूक्तियों का आलेखन किया हैं। उन्होंने अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक खण्ड को आधार मानकर इस 'सूक्ति-सुधारस' को भी सात खण्डों में ही विभाजित किया हैं। इसके प्रथम खण्ड में अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रथम भाग से सूक्तियों का आलेखन किया है। यही क्रम आगे के खण्डों में भी अपनाया गया हैं। 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड का आधार अभिधान राजेन्द्र कोष का प्रत्येक भाग ही रहा हैं। अभिधान राजेन्द्र कोष के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर सूक्तियों का संकलन करने के कारण सूक्तियों को न तो अकारादिक्रम से प्रस्तुत किया गया है और न उन्हें विषय के आधार पर ही वर्गीकृत किया गया हैं, किन्तु पाठकों की सुविधा के लिए परिशिष्ट में अकारादिक्रम से एवं विषयानुक्रम से शब्द-सूचियाँ दे दी गई हैं, इससे जो पाठक अकारादि क्रम से अथवा विषयानुक्रम से इन्हें जानना चाहे उन्हें भी सुविधा हो सकेगी। इन परिशिष्टों के माध्यम से प्रस्तुत कृति अकारादिक्रम अथवा विषयानुक्रम की कमी की पूर्ति कर देती है। प्रस्तुतकृति में प्रत्येक

सूक्ति के अन्त में अभिधान राजेन्द्र कोष के सन्दर्भ के साथ-साथ उस मूल ग्रन्थ का भी सन्दर्भ दे दिया गया है, जिससे ये सूक्तियाँ अभिधान राजेन्द्र कोष में अवतरित की गई। मूलग्रन्थों के सन्दर्भ होने से यह कृति शोध-छात्रों के लिए भी उपयोगी बन गई हैं।

वस्तुतः सूक्तियाँ अतिसंक्षेप में हमारे आध्यात्मिक एवं सामाजिक जीवन मूल्योंको उजागर कर व्यक्ति को सम्यक्जीवन जीने की प्रेरणा देती हैं। अतः ये सूक्तियाँ जन साधारण और विद्वत् वर्ग सभी के लिए उपयोगी हैं। आबाल-वृद्ध उनसे लाभ उठा सकते हैं। साध्वीद्वय ने परिश्रमपूर्वक जो इन सूक्तियों का संकलन किया है वह अभिधान राजेन्द्र कोष रूपी महासागर से रत्नों के चयन के जैसा हैं। प्रस्तुत कृति में प्रत्येक सूक्ति के अन्त में उसका हिन्दी भाषा में अर्थ भी दे दिया गया है, जिसके कारण प्राकृत और संस्कृत से अनभिज्ञ सामान्य व्यक्ति भी इस कृति का लाभ उठा सकता हैं। इन सूक्तियों के आलेखन में लेखिका-द्वय ने न केवल जैनग्रन्थों में उपलब्ध सूक्तियों का संकलन/संयोजन किया है, अपितु वेद, उपनिषद, गीता, महाभारत, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि की भी अभिधान राजेन्द्र कोष में गृहीत सूक्तियों का संकलन कर अपनी उदारहृदयता का परिचय दिया है। निश्चय ही इस महनीय श्रम के लिए साध्वी-द्वय-पूज्या डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डॉ. सुदर्शनाश्रीजी साधुवाद की पात्रा हैं। अन्त में मैं यही आशा करता हूँ कि जन सामान्य इस 'सूक्ति-सुधारस' में अवगाहन कर इसमें उपलब्ध सुधारस का आस्वादन करता हुआ अपने जीवन को सफल करेगा और इसी रूप में साध्वी द्वय का यह श्रम भी सफल होगा।

दिनांक 31-6-1998
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान
वाराणसी (उ.प्र.)

15

मन्तव्य

विद्याव्रती
शास्त्र सिद्धान्त रहस्य विद् ?
— पं. गोविन्दराम व्यास

उक्तियाँ और सूक्त-सूक्तियाँ वाङ्मय वारिधि की विवेक वीचियाँ हैं। विद्या संस्कार विमर्शिता विगत की विवेचनाएँ हैं। विवर्द्धित-वाङ्मय की वैभवी विचारणाएँ हैं। सार्वभौम सत्य की स्तुतियाँ हैं। प्रत्येक पल की परमार्शदायिनी-पारदर्शिनी प्रज्ञा पारमिताएँ हैं। समाज, संस्कृति और साहित्य की सरसता की छवियाँ हैं। क्रान्तदर्शी कोविदों की पारदर्शिनी परिभाषाएँ हैं। मनीषियों की मनीषा की महत्त्व प्रतिपादिनी पीपासाएँ हैं। क्रूर-काल के कौतुकों में भी आयुष्मती होकर अनागत का अवबोध देती रही हैं। ऐसी सूक्तियों को सश्रद्ध नमन करता हुआ वाग्देवता का विद्या-प्रिय विप्र होकर वाङ् मयी पूजा में प्रयोगवान् बन रहा हूँ।

श्रमण-संस्कृति की स्वाध्याय में स्वात्म-निष्ठा निराली रही है। आचार्य हरिभद्र, अभय, मलय जैसे मूर्धन्य महामतिमान्, सिद्धसेन जैसे शिरोमणि, सक्षम, श्रद्धालु जिनभद्र जैसे - क्षमाश्रमणों का जीवन वाङ्मयी वरिवस्या का विशेष अंग रहा है।

स्वाध्याय का शोभनीय आचार अद्यावधि-हमारे यहाँ अक्षुण्ण पाया जाता है। इसीलिए स्वाध्याय एवं प्रवचन में अप्रमत्त रहने का समादश शास्त्रकारों ने स्वीकार किया है।

वस्तुतः नैतिक मूल्यों के जागरण के लिए, आध्यात्मिक चेतना के ऊर्ध्वीकरण के लिए एवं शाश्वत मूल्यों के प्रतिष्ठापन के लिए आर्याप्रवरा द्वय द्वारा रचित प्रस्तुत ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका' एक उपादेय महत्त्वपूर्ण गौरवमयी रचना है।

आत्म-अभ्युदयशीला, स्वाध्याय-परायणा, सतत अनुशीलन उज्ज्वला आर्या डॉ. श्री प्रियदर्शनाजी एवं डॉ. श्री सुदर्शनाजी की शास्त्रीय-साधना सराहनीया है। इन्होंने अपने आम्नाय के आद्य-पुरुष की प्रतिभा का परिचय प्राप्त करने का प्रयास कर अपनी चारित्र-सम्पदा को वाङ्मयी साधना में समर्पिता करती

हुई 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ') रहस्योद्घाटन किया है ।

विदुषी श्रमणी द्वय ने प्रस्तुत कृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) को कोषों के कारागारों से मुक्तकर जीवन की वाणी में विशद करने का विश्वास उपजाया है । अतः आर्या युगल, इसप्रकार की वाङ्मयी-भारती भक्ति में भूषिता रहें एवं आत्मतोष में तोषिता होकर सारस्वत इतिहास की असामान्या विदुषी बनकर वाङ्मय के प्रांगण की प्रोन्नता भूमिका निभाती रहें । यही मेरा आत्मीय अमोघ आशीर्वाद है ।

इनका विद्या-विवेकयोग, श्रुतों की समाराधना में अच्युत रहे, अपनी निरहंकारिता को अतीव निर्मला बनाता रहे और उत्तरोत्तर समुत्साह-समुन्नत होकर स्वान्तः सुख को समुल्लसित रचता रहे । यही सदाशया शोभना शुभाकांक्षा है ।

चैत्रसुदी 5 बुध
1 अप्रैल, 98
हरजी
जिला - जालोर (राज.)

14

मन्तव्य

— *पं. जयनंदन झा,*
व्याकरण साहित्याचार्य,
साहित्य रत्न एवं शिक्षाशास्त्री

मनुष्य विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि है। वह अपने उदात्त मानवीय गुणों के कारण सारे जीवों में उत्तरोत्तर चिन्तनशील होता हुआ विकास की प्रक्रिया में अनवरत प्रवर्धमान रहा है। उसने पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति ही जीवन का परम ध्येय माना है, पर ज्ञानीजन ने इस संसार को ही परम ध्येय न मानकर अध्यात्म ज्ञान को ही सर्वोपरि स्थान दिया है। अतः जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति में धर्म, अर्थ और काम को केवल साधन मात्र माना है।

इसलिये अध्यात्म चिन्तन में भारत विश्वमंच पर अति श्रद्धा के साथ प्रशंसित रहा है। इसकी धर्म सहिष्णुता अनोखी एवं मानवमात्र के लिये अनुकरणीय रही है। यहाँ वैष्णव, जैन तथा बौद्ध धर्माचार्यों ने मिलकर धर्म की तीन पवित्र नदियों का संगम "त्रिवेणी" पवित्र तीर्थ स्थापित किया है जहाँ सारे धर्माचार्य अपने-अपने चिन्तन से सामान्य मानव को भी मिल-बैठकर धर्मचर्चा के लिये विवश कर देते हैं। इस क्षेत्र में किस धर्म का कितना योगदान रहा है, यह निर्णय करना अल्प बुद्धि साध्य नहीं है।

पर, इतना निर्विवाद है कि जैन मनीषी और सन्त अपनी-अपनी विशिष्ट विशेषताओं के लिये आत्मोत्कर्ष के क्षेत्र में तपे हुए मणि के समान सहस्त्र-सूर्य-किरण के कीर्तिस्तम्भ से भारतीय दर्शन को प्रोद्भासित कर रहे हैं, जो काल की सीमा से रहित है। जैनधर्म व दर्शन शाश्वत एवं चिरन्तन है, जो विविध आयामों से इसके अनेकान्तवाद को परिभाषित एवं पुष्ट कर रहे हैं। ज्ञान और तप तो इसकी अक्षय निधि है।

जैन धर्म में भी मन्दिर मार्गी-त्रिस्तुतिक परम्परा के सर्वोत्कृष्ट साधक जैनधर्माचार्य "श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वरजी म. सा. अपनी तपःसाधना और ज्ञानमीमांसा से परमपूत होने के कारण सार्वकालिक सार्वजनीन वन्द्य एवं प्रातः स्मरणीय भी हैं जिनका सम्पूर्ण जीवन सर्वजन हिताय एवं सर्वजन सुखाय समर्पित रहा है। इनका सम्पूर्ण-जीवन अथाह समुद्र की भाँति है, जहाँ निरन्तर गोता लगाने

पर केवल रत्न की ही प्राप्ति होती है, पर यह अमूल्य रत्न केवल साधक को ही मिल पाता है। साधक की साधना जब उच्च कोटि की हो जाती है तब साध्य संभव हो पाता है। राजेन्द्र कोष तो इनकी अक्षय शब्द मंजूषा है, जो शब्द यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है।

ऐसे महान् मनीषी एवं सन्त को अक्षरशः समझाने के लिये डॉ. प्रियदर्शनाश्री जी एवं डॉ. सुदर्शनाश्री जी साध्वीद्वय ने (१) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "सूक्ति-सुधारस" (१ से ७ खण्ड) (२) अभिधान राजेन्द्र कोष में, "जैनदर्शन वाटिका" तथा (३) 'विश्वपूज्य' (श्रीमद् राजेन्द्र सूरि : जीवन-सौरभ) इन अमूल्य ग्रन्थों की रचना कर साधक की साधना को अतीव सरल बना दिया है। परम पूज्या ! साध्वीद्वय ने इन ग्रन्थों की रचना में जो अपनी बुद्धिमत्ता एवं लेखन-चातुर्य का परिचय दिया है वह स्तुत्य ही नहीं; अपितु इस भौतिकवादी युग में जन-जन के लिये अध्यात्मक्षेत्र में पाथेय भी बनेगा। मैंने इन ग्रन्थों का विहंगम अवलोकन किया है। भाषा की प्रांजलता और विषयबोध की सुगमता तो पाठक को उत्तरोत्तर अध्ययन करने में रूचि पैदा करेगी, वह सहज ही सबके लिये हृदयग्राहिणी बनेगी। यही लेखिकाद्वय की लेखनी की सार्थकता बनेगी।

अन्त में यहाँ यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं होगा कि "रघुवंश" महाकाव्य-रचना के प्रारंभ में कालिदास ने लिखा है कि "तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम्" पर वही कालिदास कवि सम्राट् कहलाये। इसीतरह आप दोनों का यह परम लोकोपकारी अथक प्रयास भौतिकवादी मानवमात्र के लिये शाश्वत शान्ति प्रदान करने में सहायक बन पायेगा। इति। शुभम्।

25-7-98
3घ - 12 मधुबन हा. बो.
बासनी, जोधपुर

15

मन्तव्य

पं. हीरालाल शास्त्री
एम.ए.

विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री एम. ए., पीएच. डी. एवं डॉ. सुदर्शनाश्री एम. ए. पीएच. डी. द्वारा रचित ग्रन्थ 'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) सुभाषित सूक्तियों एवं वैदुष्यपूर्ण हृदयग्राही वाक्यों के रूप में एक पीयूष सागर के समान है ।

आज के गिरते नैतिक मूल्यों, भौतिकवादी दृष्टिकोण की अशान्ति एवं तनावभरे सांसारिक प्राणी के लिए तो यह एक रसायन है, जिसे पढ़कर आत्मिक शान्ति, दृढ इच्छा-शक्ति एवं नैतिक मूल्यों की चारित्रिक सुरभि अपने जीवन के उपवन में व्यक्ति एवं समष्टि की उदात्त भावनाएँ गहगहायमान हो सकेगी, यह अतिशयोक्ति नहीं, एक वास्तविकता है ।

आपका प्रयास स्वान्तःसुखाय लोकहिताय है । 'सूक्ति-सुधारस' जीवन में संघर्षों के प्रति साहस से अडिग रहने की प्रेरणा देता है ।

ऐसे सत्साहित्य 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की महक से व्यक्ति को जीवंत बनाकर आध्यात्मिक शिवमार्ग का पथिक बनाते हैं ।

आपका प्रयास भगीरथ प्रयास है ।

भविष्य में शुभ कामनाओं के साथ ।

महावीर जन्म कल्याणक, गुरुवार
दि. 9 अप्रैल, 1998
ज्योतिष-सेवा
राजेन्द्रनगर
जालोर (राज.)

निवृत्तमान संस्कृत व्याख्याता
राज. शिक्षा-सेवा
राजस्थान

16

मन्तव्य

— *डॉ. अखिलेशकुमार राय*

साध्वीद्वय डो. प्रियदर्शनाश्रीजी एवं डो. सुदर्शनाश्रीजी द्वारा रचित प्रस्तुत पुस्तक का मैंने आद्योपान्त अवलोकन किया है। इनकी रचना 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) में श्रीमद् राजेन्द्रसूरीश्वर जी की अमरकृति 'अभिधान राजेन्द्र कोष' के प्रत्येक भाग को आधार बनाकर कुछ प्रमुख सूक्तियों का सुंदर-सरस व सरल हिन्दी भाषा में अनुवाद प्रस्तुत किया गया है। साध्वीद्वय का यह संकल्प है कि 'अभिधान राजेन्द्र कोष' में उपलब्ध लगभग २७०० सूक्तियों का सात खण्डों में संचयन कर सर्वसाधारण के लिये सुलभ कराया जाय। इसप्रकार का अनूठा संकल्प अपने आपमें अद्वितीय कहा जा सकता है। मेरा विश्वास है कि ऐसी सूक्ति सम्पन्न रचनाओं से पाठकगण के चरित्र निर्माण की दिशा निर्धारित होगी।

अब सुहृद्जनों का यह पुनीत कर्तव्य है कि वे इसे अधिक से अधिक लोगों के पठनार्थ सुलभ करायें। मैं इस महत्त्वपूर्ण रचना के लिये साध्वीद्वय की सराहना करता हूँ; इन्हें साधुवाद देता हूँ और यह शुभकामना प्रकट करता हूँ कि ये इसप्रकार की और भी अनेक रचनायें समाज को उपलब्ध करायें।

दिनांक 9 अप्रैल, 1998
चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
1/1 प्रोफेसर कालोनी,
महाराजा कोलेज,
छतरपुर (म.प्र.)

मन्तव्य

— डॉ. अमृतलाल गाँधी
सेवानिवृत्त प्राध्यापक,

सम्यग्ज्ञान की आराधना में समर्पिता विदुषी साध्वीद्वय डॉ. प्रियदर्शनाश्रीजी म. एवं डॉ. सुदर्शना श्रीजी म. ने 'सूक्ति-सुधारस' (1 से 7 खण्ड) की 2667 सूक्तियों में अभिधान राजेन्द्र कोष के मन्थन का मक्खन सरल हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर जनसाधारण की सेवार्थ यह ग्रन्थ लिखकर जैन साहित्य के विपुल ज्ञान भण्डार में सराहनीय अभिवृद्धि की है। साध्वीद्वय ने कोष के सात भागों की सूक्तियों / सुकथनों की अलग-अलग सात खण्डों में व्याख्या करने का सफल सुप्रयास किया है, जिसकी मैं सराहना एवं अनुमोदना करते हुए स्वयं को भी इस पवित्र ज्ञानगंगा की पवित्र धारा में आंशिक सहभागी बनाकर सौभाग्यशाली मानता हूँ।

वस्तुतः अभिधान राजेन्द्र कोष पयोनिधि है। पूज्या विदुषी साध्वीद्वयने सूक्ति-सुधारस रचकर एक ओर कोष की विश्वविख्यात महिमा को उजागर किया है और दूसरी ओर अपने शुभ श्रम, मौलिक अनुसंधान दृष्टि, अभिनव कल्पना और हंस की तरह मुक्ताचयन की विवेकशीलता का परिचय दिया है।

मैं उनको इस महान् कृति के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

जयनारायण व्यास विश्व विद्यालय,
जोधपुर

दिनांक : 16 अप्रैल, 1998

738, नेहरूपार्क रोड,
जोधपुर (राजस्थान)

18

मन्तव्य

— भागचन्द जैन कवाड
प्राध्यापक (अंग्रेजी)

प्रस्तुत ग्रंथ "अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस" (1 से 7 खण्ड) 5 परिशिष्टों में विभक्त 2667 सूक्तियों से युक्त एक बहुमूल्य एवं अमृत कणों से परिपूर्ण ग्रन्थ है। विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी द्वारा प्रस्तुत ग्रन्थ में अन्यान्य उपयोगी जीवन दर्शन से सम्बन्धित विषयों का समावेश किया गया है। उदाहरण स्वरूप जीवनोपयोगी, नैतिकता तथा आध्यात्मिक जगत् को स्पर्श करने वाले विषय यथा – 'धर्म में शीघ्रता', 'आत्मवत् चाहो', 'समाधि', 'किञ्चिद् श्रेयस्कर', 'अकथा', 'क्रोध परिणाम', 'अपशब्द', सच्चा भिक्षु, धीर साधक, पुण्य कर्म, अजीर्ण, बुद्धियुक्त वाणी, बलप्रद जल, सच्चा आराधक, ज्ञान और कर्म, पूर्ण आत्मस्थ, दुर्लभ मानव-भव, मित्र-शत्रु कौन ?, कर्त्ता-भोक्ता आत्मा, रत्नपारखी, अनुशासन, कर्म विपाक, कल्याण कामना, तेजस्वी वचन, सत्योपदेश, धर्मपात्रता, स्याद्वाद आदि।

सर्वत्र ग्रन्थ में अमृत-कणों का कलश छलक रहा है तथा उनकी सुवास व्याप्त है जो पाठक को भाव विभोर कर देती है, वह कुछ क्षणों के लिए अतिशय आत्मिक सुख में लीन हो जाता है। विदुषी महासतियाँ द्वय डॉ. प्रियदर्शना श्री जी एवं डॉ. सुदर्शना श्री जी ने अपनी प्रखर लेखनी के द्वारा गूढ़तम विषयों को सरलतम रूप से प्रस्तुत कर पाठकों को सहज भाव से सुधा का पान कराया है। धन्य है उनकी अथक साधना लगन व परिश्रम का सुफल जो इस धरती पर सर्वत्र आलोक किरणें बिखेरेगा और धन्य एवं पुलकित हो उठेंगे हम सब।

अग्रवाल गर्ल्स कोलेज
मदनगंज (राज.)

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
दिनांक 9 अप्रैल 1998
विजय निवास,
कचहरी रोड़,
किशनगढ़ शहर (राज.)


दर्पण

दर्पण

'अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस' ग्रन्थ का प्रकाशन 7 खण्डों में हुआ है। प्रथम खण्ड में 'अ' से 'ह' तक के शीर्षकों के अन्तर्गत सूक्तियाँ संजोयी गई हैं। अन्त में अकारादि अनुक्रमणिका दी गई हैं। प्रायः यही क्रम 'सूक्ति सुधारस' के सातों खण्डों में मिलेगा। शीर्षकों का अकारादि क्रम है। शीर्षक सूची विषयानुक्रम आदि हर खण्ड के अन्त में परिशिष्ट में दी गई है। पाठक के लिए परिशिष्ट में उपयोगी सामग्री संजोयी गई है। प्रत्येक खण्ड में 5 परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में अकारादि अनुक्रमणिका, द्वितीय परिशिष्ट में विषयानुक्रमणिका, तृतीय परिशिष्ट में अभिधान राजेन्द्र : पृष्ठ संख्या, अनुक्रमणिका, चतुर्थ परिशिष्ट में जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः गाथा/श्लोकादि अनुक्रमणिका और पञ्चम परिशिष्ट में 'सूक्ति-सुधारस' में प्रयुक्त सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची दी गई है। हर खण्ड में यही क्रम मिलेगा। 'सूक्ति-सुधारस' के प्रत्येक खण्ड में सूक्ति का क्रम इसप्रकार रखा गया है कि सर्व प्रथम सूक्ति का शीर्षक एवं मूल सूक्ति दी गई है। फिर वह सूक्ति अभिधान राजेन्द्र कोष के किस भाग के किस पृष्ठ से उद्धृत है। सूक्ति-आधार ग्रन्थ कौन-सा है ? उसका नाम और वह कहाँ आयी है, वह दिया है। अन्त में सूक्ति का हिन्दी भाषा में सरलार्थ दिया गया है।

सूक्ति-सुधारस के प्रथम खण्ड में 251 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के द्वितीय खण्ड में 259 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के तृतीय खण्ड में 289 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के चतुर्थ खण्ड में 467 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के पंचम खण्ड में 471 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के षष्ठम खण्ड में 607 सूक्तियाँ हैं।

सूक्ति-सुधारस के सप्तम खण्ड में 323 सूक्तियाँ हैं।

कुल मिलाकर 'सूक्ति सुधारस' के सप्त खण्डों में 2667 सूक्तियाँ हैं। इस ग्रन्थ मं न केवल जैनागमों व जैन ग्रन्थों की सूक्तियाँ हैं, अपितु वेद,

उपनिषद, गीता, महाभारत, आयुर्वेद शास्त्र, ज्योतिष, नीतिशास्त्र, पुराण, स्मृति, पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की भी सूक्तियाँ हैं ।

1. विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय
2. लेखिका द्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

'विश्वपूज्य:'
जीवन-दर्शन

20

जीवन-दर्शन

महिमामण्डित बहुरत्नावसुन्धरा से समलंकृत परम पावन भारतभूमि की वीर प्रसविनी राजस्थान की ब्रजधरा भरतपुर में सन् 1827 - 3 दिसम्बर को पौष शुक्ला सप्तमी, गुरुवार के शुभ दिन एक दिव्य नक्षत्र संतशिरोमणि विश्वपूज्य आचार्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने जन्म लिया, जिन्होंने अस्सी वर्ष की आयु तक लोकमाङ्गल्य की गंगधारा समस्त जगत् में प्रवाहित की ।

उनका जीवन भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने के लिए समर्पित हुआ ।

वह युग अँग्रेजी राज्य की धूमिल घन घटाओं से आच्छादित था। पाश्चात्त्य संस्कृति की चकाचौंध ने भारत की सरल आत्मा को कुण्ठित कर दिया था। नव पीढ़ी ईसाई मिशनरियों के धर्मप्रचार से प्रभावित हो गई थी। अँग्रेजी शासन में पद-लिप्सा के कारण शिक्षित युवापीढ़ी अतिशय आकर्षित थी ।

ऐसे अन्धकारमय युग में भारतीय संस्कृति की गरिमा को अक्षुण्ण रखने के लिए जहाँ एक ओर राजा राममोहनराय ने ब्रह्मसमाज की स्थापना की, तो दूसरी ओर दयानन्द सरस्वती ने वैदिक धर्म का शंखनाद किया। उसी युग में पुनर्जागरण के लिए प्रार्थना समाज और एनी बेसेन्ट ने थियोसोफिकल सोसायटी की स्थापना की। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम को अँग्रेजी शासन की तोपों ने कुचल दिया था। भारतीय जनता को निराशा और उदासीनता ने घेर लिया था।

जागृति का शंखनाद फूँकने के लिए लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने यह उद्घोषणा की – 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' महामना मदनमोहन मालवीय ने बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय की स्थापना की ।

श्री मोहनदास कर्मचन्द गान्धी (राष्ट्रपिता - महात्मा गाँधी) को महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की स्वीकृति से उनके पिताश्री कर्मचन्दजी ने इंग्लैंड में बार-एट-लॉ उपाधि हेतु भेजा। गाँधीजी ने महान् संत श्रीमद् राजचन्द्र की तीन प्रतिज्ञाएँ पालन कर भारत की गौरवशालिनी संस्कृति को उजागर किया। ये तीन प्रतिज्ञाएँ थीं — 1. मांसाहार त्याग 2. मदिरापान त्याग और 3. ब्रह्मचर्य का पालन। ये प्रतिज्ञाएँ भारतीय संस्कृति की रवि-रश्मियाँ हैं, जिनके प्रकाश से भारत जगद्गुरु के पद पर प्रतिष्ठित हैं, परन्तु आँग्ल शासन ने हमारी उज्ज्वल संस्कृति को नष्ट करने का भरसक प्रयास किया।

ऐसे समय में अनेक दिव्य एवं तेजस्वी महापुरुषों ने जन्म लिया जिनमें श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्री आत्मारामजी (सुप्रसिद्ध जैनाचार्य श्रीमद् विजयानन्द सूरिजी) एवं विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी म. आदि हैं।

श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी ने चरित्र निर्माण और संस्कृति की पुनर्स्थापना के लिए जो कार्य किया, वह स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है। एक ओर उन्होंने भारतीय साहित्य के गौरवशाली, चिन्तामणि रत्न के समान 'अभिधान राजेन्द्र कोष' को सात खण्डों में रचकर भारतीय वाङ्मय को विश्व में गौरवान्वित किया, तो दूसरी और उन्होंने सरल, तपोनिष्ठ, त्याग, करुणार्द्र और कोमल जीवन से सबको मैत्री-सूत्र में गुम्फित किया।

विश्वपूज्य की उपाधि उनको जनता जनार्दन ने, उनके प्रति अगाध श्रद्धा-प्रीति और भक्ति से प्रदान की है, यद्यपि ये निर्मोही अनासक्त योगी थे। न तो किसी उपाधि-पदवी के आकाङ्क्षी थे और न अपनी यशोपताका फहराने के लिए लालायित थे।

उनका जीवन अनन्त ज्योतिर्मय एवं करुणा रस का सुधा-सिन्धु था!

उन्होंने अपने जीवनकाल में महनीय 61 ग्रन्थों की रचना की है जिनमें काव्य, भक्ति और संस्कृति की रसवंती धाराएँ प्रवाहित हैं।

वस्तुतः उनका मूल्यांकन करना हमारे वश की बात नहीं, फिरभी हम प्रीतिवश यह लिखती हैं कि जिस समय भारत के मनीषी-साहित्यकार एवं कवि भारतीय संस्कृति और साहित्य को पुनर्जीवित करना चाहते थे, उस समय विश्वपूज्य भी भारत के गौरव को उद्भासित करने के लिए 63 वर्ष की आयु में सन् 1890 आश्विन शुक्ला 2 को कोष के प्रणयन में जुट गए। इस कोष के सप्त खण्डों को उन्होंने सन् 1903 चैत्र शुक्ला 13 को परिसम्पन्न किया। यह शुभ दिन भगवान् महावीर का जन्म कल्याणक दिवस है। शुभारम्भ नवरात्रि में किया और समापन प्रभु के जन्म-कल्याणक के दिन वसन्त ऋतु की मनमोहक सुगन्ध बिखेरते हुए किया।

यह उल्लेख करना समीचीन है कि उस युग में मैकाले ने अँग्रेजी भाषा और साहित्य को भारतीय विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में अनिवार्य कर दिया था और नई पीढ़ी अँग्रेजी भाषा तथा साहित्य को पढ़कर भारतीय साहित्य व संस्कृति को हेय समझने लगी थी, ऐसे पराभव युग में बालगंगाधर तिलक ने 'गीता रहस्य', जैनाचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरजी ने 'कर्मयोग', श्रीमद् आत्मारामजी ने 'जैन तत्त्वादर्श' व 'अज्ञान तिमिर भास्कर',[1] महान् मनीषी अरविन्द घोष ने 'सावित्री' महाकाव्य लिखकर पश्चिम-जगत् को अभिभूत कर दिया।

उस युग में प्रज्ञा महर्षि जैनाचार्य विश्वपूज्य श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी गुरुदेव ने '**अभिधान राजेन्द्र कोष**' की रचना की। उनके द्वारा निर्मित यह अनमोल ग्रन्थराज एक अमरकृति है। यह एक ऐसा विशाल कार्य था, जो एक व्यक्ति की सीमा से परे की बात थी, किन्तु यह दायित्व विश्वपूज्य ने अपने कंधों पर ओढ़ा।

भारतीय संस्कृति और साहित्य के पुनर्जागरण के युग में विश्वपूज्य ने महान् कोष को रचकर जगत् को ऐसा अमर ग्रन्थ दिया जो चिर नवीन है। यह 'एन साइक्लोपिडिया' समस्त भाषाओं की करुणार्द्र

---

1 अज्ञान तिमिर भास्कर को पढ़कर अंग्रेज विद्वान् हर्नेल इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने श्रीमद् आत्मारामजी को 'अज्ञान तिमिर भास्कर' के अलंकरण से विभूषित किया तथा उन्होंने अपने ग्रन्थ 'उपासक दशांग' के भाष्य को उन्हें समर्पित किया।

माता संस्कृत, जनमानस में गंग-धारा के समान बहनेवाली जनभाषा अर्धमागधी और जनता-जनार्दन को प्रिय लगनेवाली प्राकृत भाषा - इन तीनों भाषाओं के शब्दों की सुस्पष्ट, सरल और सहज व्याख्या उद्‌भासित करता है ।

इस महाकोष का वैशिष्ट्य यह है कि इसमें गीता, मनुस्मृति, ऋग्वेद, पद्मपुराण, महाभारत, उपनिषद्, पातंजल योगदर्शन, चाणक्य नीति, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रन्थों की सुबोध टीकाएँ और भाष्य उपलब्ध हैं । साथ ही आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'चरक संहिता' पर भी व्याख्याएँ हैं ।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' की प्रशंसा भारतीय एवं पाश्चात्त्य विद्वान् करते नहीं थकते । इस ग्रन्थ रत्नमाला के सात खण्ड सात अनुपम दिव्य रत्न हैं, जो अपनी प्रभा से साहित्य-जगत् को प्रदीप्त कर रहे हैं ।

इस भारतीय राजर्षि की साहित्य एवं तप-साधना पुरातन ऋषि के समान थी । वे गुफाओं एवं कन्दराओं में रहकर ध्यानालीन रहते थे । उन्होंने स्वर्णगिरि, चामुण्डावन, मांगीतुंगी आदि गुफाओं के निर्जन स्थानों में तप एवं ध्यान-साधना की । ये स्थान वन्य पशुओं से भयावह थे, परन्तु इस ब्रह्मर्षि के जीवन से जो प्रेम और मैत्री की दुग्धधारा प्रवाहित होती थी, उससे हिंस्र पशु-पक्षी भी उनके पास शांत बैठते थे और भयमुक्त हो चले जाते थे ।

ऐसे महापुरुष के चरण कमलों में राजा-महाराजा, श्रीमन्त, राजपदाधिकारी नतमस्तक होते थे । वे अत्यन्त मधुर वाणी में उन्हें उपदेश देकर गर्व के शिखर से विनय-विनम्रता की भूमि पर उतार लेते थे और वे दीन-दुखियों, दरिद्रों, असहायों, अनाथों एवं निर्बलों के लिए साक्षात् भगवान् थे ।

उन्होंने सामाजिक कुरीतियों-कुपरम्पराओं, बुराइयों को समाप्त करने के लिए तथा धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, मिथ्याधारणाओं और कुसंस्कारों को मिटाने के लिए ग्राम-ग्राम, नगर-नगर पैदल विहार कर विभिन्न प्रवचनों के माध्यम से उपदेशामृत की अजस्रधारा प्रवाहित

की । तृष्णातुर मनुष्यों को संतोषामृत पिलाया । कुसंपों के फुफकारते फणिधरों को शांत कर समाज को सुसंप का सुधा-पान कराया ।

विश्वपूज्य ने नारी-गरिमा के उत्थान के लिए भी कन्या-पाठशालाएँ, दहेज उन्मूलन, वृद्ध-विवाह निषेध आदि का आजीवन प्रचार-प्रसार किया। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' के अनुरूप सन्देश दिया अपने प्रवचनों एवं साहित्य के माध्यम से।

गुरुदेव ने पर्यावरण-रक्षण के लिए वृक्षों के संरक्षण पर जोर दिया । उन्होंने पशु-पक्षी के जीवन को अमूल्य मानते हुए उनके प्रति प्रेमभाव रखने के लिए उपदेश दिए । पर्वतों की हरियाली, वन-उपवनों की शोभा, शान्ति एवं अन्तर-सुख देनेवाली है । उनका रक्षण हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक है । इसप्रकार उन्होंने समस्त जीवराशि के संरक्षण के लिए उपदेश दिया ।

काव्य विभूषा : उनकी काव्य कला अनुपम है । उन्होंने शास्त्रीय राग-रागिनियों में अनेक सज्झाय व स्तवन गीत रचे हैं । उन्होंने शास्त्रीय रागों में ठुमरी, कल्याण, भैरवी, आशावरी आदि का अपने गीतों में सुरम्य प्रयोग किया है । लोकप्रिय रागिनियों में वनझारा, गरबा, ख्याल आदि प्रियंकर हैं । प्राचीन पूजा गीतों की लावनियों में 'सलूणा', 'रेखता', 'तीरथनी आशातना नवि करिए रे' आदि रागों का प्रयोग मनमोहक हैं । उन्होंने उर्दू की गजल का भी अपने गीतों में प्रयोग किया है ।

चैत्यवंदन - स्तुतियों में - दोहा, शिखरणी, स्रग्धरा, मालिनी, पद्धडी प्रमुख हैं । पद्धडी छन्द में रचित श्री महावीर जिन चैत्यवंदन की एक वानगी प्रस्तुत है –

"संसार सागर तार धीर, तुम विण कोण मुझ हरत पीर ।
मुझ चित्त चंचल तुं निवार, हर रोग सोग भयभीत वार ॥ [1]

एक निश्छल भक्त का दैन्य निवेदन मौन-मधुर है । साथ ही अपने परम तारक परमात्मा पर अखण्ड विश्वास और श्रद्धा-भक्ति को प्रकट करता है ।

---

1. जिन - भक्ति - मंजूषा भाग - 1

चौपड़ क्रीड़ा– सज्झाय में अलौकिक निरंजन शुद्धात्म चेतन रूप प्रियतम के साथ विश्वपूज्य की शुद्धात्मा रूपी प्रिया किस प्रकार चौपड़ खेलती है ? वे कहते हैं –

'रंग रसीला मारा, प्रेम पनोता मारा, सुखरा सनेही मारा साहिबा ।
पिउ मोरा चोपड़ इणविध खेल हो ॥
चार चोपड़ चारों गति, पिउ मोरा चोरासी जीवा जोन हो ।
कोठा चोरासिये फिरे, पिउ मोरा सारी पासा वसेण हो ॥'' [1]

यह चौपड़ का सुन्दर रूपक है और उसके द्वारा चतुर्गति रूप संसार में चौपड़ का खेल खेला जा रहा है। साधक की शुद्धात्म-प्रिया चेतन रूप प्रियतम को चौपड़ के खेल का रहस्योद्घाटन करते हुए कहती है कि चौपड़ चार पट्टी और 84 खाने की होती है। इसीतरह चतुर्गति रूप चौपड़ में भी 84 लक्षयोनि रूप 84 घर-उत्पत्ति-स्थान होते हैं। चतुर्गति चौपड़ के खेल को जीतकर आत्मा जब विजयी बन जाती है, तब वह मोक्ष रूपी घर में प्रवेश करती है।

अध्यात्मयोगी संत आनंदघन ने भी ऐसी ही चौपड़ खेली है –

''प्राणी मेरो, खेलै चतुरगति चोपर ।
नरद गंजफा कौन गिनत है, मानै न लेखे बुद्धिवर ॥
राग दोस मोह के पासे, आप वणाए हितधर ।
जैसा दाव परै पासे का, सारि चलावै खिलकर ॥'' [2]

विश्वपूज्य का काव्य अप्रयास हृदय-वीणा पर अनुगुंजित है। 'पिउ' [प्रियतम] शब्द कविता की अंगूठी में हीरककणी के समान मानो जड़ दिया।

विश्वपूज्य की आत्मरमणता उनके पदों में दृष्टिगत होती है। वे प्रकाण्ड विद्वान् – मनीषी होते हुए भी अध्यात्म योगीराज आनन्दघन की तरह अपनी मस्त फकीरी में रमते थे। उनका यह पद मनमोहक है –

'अवधू आतम ज्ञान में रहना,
किसी कु कुछ नहीं कहना ॥' [3]

---

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1 2. आनन्दघन ग्रन्थावली
3. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1

'मौनं सर्वार्थ साधनम्' की अभिव्यंजना इसमें मुखरित हुई है। उनके पदों में व्यक्ति की चेतना को झकझोर देने का सामर्थ्य है, क्योंकि वे उनकी सहज अनुभूति से निःसृत है। विश्वपूज्य का अंतरंग व्यक्तित्व उनकी काव्य-कृतियों में व्याप्त है। उनके पदों में कबीर-सा फक्कड़पन झलकता है। उनका यह पद द्रष्टव्य है –

"ग्रन्थ रहित निर्ग्रन्थ कहीजे, फकीर फिकर फकनारा।
ज्ञानवास में बसे संन्यासी, पंडित पाप निवारा रे
सद्गुरु ने बाण मारा, मिथ्या भस्म विदारा रे ॥" [1]

विश्वपूज्य का व्यक्तित्व वैराग्य और अध्यात्म के रंग में रंगा था। उनकी आध्यात्मिकता अनुभवजन्य थी। उनकी दृष्टि में आत्मज्ञान ही महत्त्वपूर्ण था। 'परभावों में घूमनेवाला आत्मानन्द की अनुभूति नहीं कर सकता। उनका मत था कि जो पर पदार्थों में रमता है वह सच्चा साधक नहीं है। उनका एक पद द्रष्टव्य है –

'आतम ज्ञान रमणता संगी, जाने सब मत जंगी।
पर के भाव लहे घट अंतर, देखे पक्ष दुरंगी ॥
सोग संताप रोग सब नासे, अविनासी अविकारी।
तेरा मेरा कछु नहीं ताने, भंगे भवभय भारी ॥
अलख अनोपम रूप निज निश्चय, ध्यान हिये बिच धरना।
दृष्टि राग तजी निज निश्चय, अनुभव ज्ञानकुं वरना ॥" [2]

उनके पदों में प्रेम की धारा भी अबाधगति से बहती है। उन्होंने शांतिनाथ परमात्मा को प्रियतम का रूपक देकर प्रेम का रहस्योद्घाटन किया है। वे लिखते हैं –

'श्री शांतिजी पिउ मोरा, शांतिसुख सिरदार हो।
प्रेमे पाम्या प्रीतड़ी, पिउ मोरा प्रीतिनी रीति अपार हो ॥
शांति सलूणो म्हारो, प्रेम नगीनो म्हारो, स्नेह समीनो म्हारो नाहलो।
पिउ पल एक प्रीति पमाड हो, प्रीत प्रभु तुम प्रेमनी,
पीउ मोरा मुज मन में नहिं माय हो ॥" [3]

---

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
2. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1
3. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1

यद्यपि उनकी दृष्टि में प्रेम का अर्थ साधारण-सी भावुक स्थिति न होकर आत्मानुभवजन्य परमात्म-प्रेम है, आत्मा-परमात्मा का विशुद्ध निरूपाधिक प्रेम है। इसप्रकार, विश्वपूज्य की कृतियों में जहाँ-जहाँ प्रेम-तत्त्व का उल्लेख हुआ है, वह नर-नारी का प्रेम न होकर आत्म-ब्रह्म-प्रेम की विशुद्धता है।

विश्वपूज्य में धर्म सद्भाव भी भरपूर था। वे निष्पक्ष, निस्पृही मानव-मानव के बीच अभेद भाव एवं प्राणि मात्र के प्रति प्रेम-पीयूष की वर्षा करते थे। उन्होंने अरिहन्त, अल्लाह-ईश्वर, रूद्र-शिव, ब्रह्मा-विष्णु को एक ही माना है। एक पद में तो उन्होंने सर्व धर्मों में प्रचलित परमात्मा के विविध नामों का एक साथ प्रयोग कर समन्वय-दृष्टि का अच्छा परिचय दिया है। उनकी सर्व धर्मों के प्रति समादरता का निम्नांकित पद मननीय है –

'ब्रह्म एक छे लक्षण लक्षित, द्रव्य अनंत निहारा।
सर्व उपाधि से वर्जित शिव ही, विष्णु ज्ञान विस्तारा रे॥
ईश्वर सकल उपाधि निवारी, सिद्ध अचल अविकारा।
शिव शक्ति जिनवाणी संभारी, रूद्र है करम संहारा रे॥
अल्लाह आतम आपहि देखो, राम आतम रमनारा।
कर्मजीत जिनराज प्रकासे, नयथी सकल विचारा रे॥'[1]

विश्वपूज्य के इस पद की तुलना संत आनंदघन के पद से की जा सकती है।[2]

यह सच है कि जिसे परमतत्त्व की अनुभूति हो जाती है, वह संकीर्णता के दायरे में आबद्ध नहीं रह सकता। उसके लिए राम-कृष्ण, शंकर-गिरीश, भूतेश्वर, गोविन्द, विष्णु, ऋषभदेव और महादेव

---

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1 पृ. 72
2. 'राम कहौ रहिमान कहौ, कोउ कान्ह कहौ महादेव री।
पारसनाथ कहौ कोउ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वयमेवरी॥
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कलपना रोपित, आप अखण्ड सरूप री॥
निज पद रमै राम सो कहिये, रहम करे रहमान री।
करषै करम कान्ह सो कहियै, महादेव निरवाण री॥
परसै रूप सो पारस कहियै, ब्रह्म चिन्है सो ब्रह्म री।
इहविध साध्यो आप आनन्दघन, चेतनमय निःकर्मरी॥' आनंदघन ग्रन्थावली, पद ६५

या ब्रह्म आदि में कोई अन्तर नहीं रह जाता है। उसका तो अपना एक धर्म होता है और वह है – आत्म-धर्म (शुद्धात्म-धर्म)। यही बात विश्वपूज्य पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। सामान्यतया जैन परम्परा में परम तत्त्व की उपासना तीर्थंकरों के रूप में की जाती रही है; किन्तु विश्वपूज्य ने परमतत्त्व की उपासना तीर्थंकरों की स्तुति के अतिरिक्त शंकर, शंभु, भूतेश्वर, महादेव, जगकर्ता, स्वयंभू, पुरूषोत्तम, अच्युत, अचल, ब्रह्म-विष्णु-गिरीश इत्यादि के रूप में भी की है। उन्होंने निर्भीक रूप से उद्घोषणा की है –

"शंकर शंभु भूतेश्वरो ललना, मही माहें हो वली किस्यो महादेव,
जिनवर ए जयो ललना।
जगकर्ता जिनेश्वरो ललना, स्वयंभू हो सहु सुर करे सेव,
जिनवर ए जयो ललना॥
वेद ध्वनि वनवासी ललना, चौमुखे हो चारे वेद सुचंग, जिन.।
वाणी अनक्षरी दिलवसी ललना, ब्रह्माण्डे बीजो ब्रह्म विभंग, जि.॥
पुरूषोत्तम परमातमा ललना, गोविन्द हो गिरूवो गुणवंत, जि.।
अच्युत अचल छे ओपमा ललना, विष्णु हो कुण अवर कहंत, जि.॥
नाभेय रिषभ जिणंदजी ललना, निश्चय थी हो देख्यो देव दमीश।
एहिज सूरिशजेन्द्र जी ललना, तेहिज हो ब्रह्मा विष्णु गिरीश, जि.॥"[1]

वास्तव में, विश्वपूज्य ने परमात्मा के लोक प्रसिद्ध नामों का निर्देश कर समन्वय-दृष्टि से परमात्म-स्वरूप को प्रकट किया है।

इसप्रकार कहा जा सकता है कि विश्वपूज्य ने धर्मान्धता, संकीर्णता, असहिष्णुता एवं कूपमण्डूकता से मानव-समाज को ऊपर उठाकर एकता का अमृतपान कराया। इससे उनके समय की राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थिति का भी परिचय मिलता है।

'अभिधान राजेन्द्र कोष' कथाओं का सुधासिन्धु है। कथाओं में जीवन को सुसंस्कृत, सभ्य एवं मानवीय गुण-सम्पदा से विभूषित करने का सरस शैली में अभिलेखन हुआ है। कथाएँ इक्षुरस के समान मधुर, सरस और सहज शैली में आलेखित हैं। शैली में प्रवाह हैं, प्राकृत और संस्कृत शब्दों को हीरक कणियों के समान तराश कर

1. जिन भक्ति मंजूषा भाग – 1 पृ. 72

कथाओं को सुगम बना दिया है।

उपसंहार :

विश्वपूज्य अजर-अमर है। उनका जीवन 'तप्तं तप्तं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्त वर्णम्' की उक्ति पर खरा उतरता है। जीवन में तप की कंचनता है, कवि-सी कोमलता है। विद्वत्ता के हिमाचल में से करुणा की गंग-धारा प्रवाहित है।

उन्होंने जगत् को 'अभिधान राजेन्द्र कोष' रूपी कल्पतरू देकर इस धरती को स्वर्ग बना दिया है, क्योंकि इस कोष में ज्ञान-भक्ति और कर्मयोग का त्रिवेणी संगम हुआ है। यह लोक माङ्गल्य से भरपूर क्षीर-सागर है। उनके द्वारा निर्मित यह कोष आज भी आकाशी ध्रुवतारे की भाँति टिमटिमा रहा है और हमें सतत दिशा-निर्देश दे रहा है।

विश्वपूज्य के लिए अनेक अलंकार ढूँढ़ने पर भी हमें केवल एक ही अलंकार मिलता है – वह है – अनन्वय अलंकार – अर्थात् विश्वपूज्य विश्वपूज्य ही है।

उनका स्वर्गवास 21 दिसम्बर सन् 1906 में हुआ, परन्तु कौन कहता है कि विश्वपूज्य विलीन हो गये ? वे जन-जन के श्रद्धा केन्द्र सबके हृदय-मंदिर में विद्यमान हैं !

अभिधान राजेन्द्र कोष में,

सूक्ति-सुधारस

(सप्तम खण्ड)

1. पापात्मा

सकम्मुणा कच्चइ पावकारी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 57]

— *उत्तराध्ययन - 4/3*

पापात्मा अपने ही कर्मों से पीड़ित होता है ।

2. कर्म-भोक्ता अकेला

संसारमावन्न परस्स अट्ठा,
साहारणं जं च करेइ कम्मं ।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले,
न बंधवा बंधवयं उवेन्ति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 58]

— *उत्तराध्ययन - 4/4*

संसारी प्राणी अपने प्रिय-बन्धुजनों के लिए बुरे-से-बुरे कर्म भी कर डालता है, किन्तु जब उस कर्म का दुष्फल भोगने का समय आता है, तब वह अकेला ही भोगता है, उस समय वे बन्धुजन बंधुता नहीं दिखाते ।

3. भारंडवत् सदा सजग

घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 59]

— *उत्तराध्ययन - 4/6*

समय बड़ा भयंकर है और शरीर बड़ा निर्बल ।

4. अशरण, धन

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्थ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 59]

— *उत्तराध्ययन 4/5*

प्रमत्त मनुष्य धन से त्राण नहीं पाता न इसलोक में और न ही परलोक में ।

5. देह-पुष्टि

लाभंतरे जीविय विहइत्ता,

पच्छा परिण्णाय मलावधंसी ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 59]

— *उत्तराध्ययन 4/7*

जबतक नए-नए गुणों की उपलब्धि हो, तबतक जीवन को पोषण दे और जब यह शरीर स्वयं साधना में निरुपयोगी प्रतीत हो, तब संयमी साधक मल के समान इसका त्याग कर दें।

6. प्रबुद्ध साधक

सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 59]

— *उत्तराध्ययन 4/6*

प्रबुद्ध साधक सोए हुए मनुष्यों के बीच भी सदा जागृत (अप्रमत्त) रहें।

7. द्रुतमोक्षगामी

तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 60]

— *उत्तराध्ययन 4/8*

अप्रमत्त मुनि शीघ्र ही मोक्ष पा लेता है।

8. इच्छा-निरोध

छंदं निरोहेण उवेइ मोक्खं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 60]

— *उत्तराध्ययन 4/8*

इच्छाओं को जीतने से मोक्ष प्राप्त होता है।

9. मोह

मुहुं मुहुं मोह-गुणे जयंतं अणेगरूवा समणं चरंतं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 61]

— ***उत्तराध्ययन 4/11***

मोह को जीतने के लिए श्रमण कई प्रकार से बार-बार पुरुषार्थ करते हैं।

10. अहंकार-वर्जन

विणएज्ज माणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 61]

— ***उत्तराध्ययन 4/12***

अभिमान मत करो।

11. दम्भ-वर्जन

मायं न सेवे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 61]

— ***उत्तराध्ययन 4/12***

दम्भ मत करो.

12. लोभ-वर्जन

पयहिज्ज लोहं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 61]

— ***उत्तराध्ययन 4/12***

लोभ मत करो।

13. क्रोध-वर्जन

रक्खेज्ज कोहं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 61]

— ***उत्तराध्ययन 4/12***

क्रोध से अपने को बचाएँ।

14. विवेक

खिप्पं न सक्केइ विवेगमेउं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 61]

— ***उत्तराध्ययन 4/10***

विवेक-ज्ञान शीघ्र प्राप्त नहीं होता ।

15. अप्रमाद

अप्पाणरक्खी चरमप्पमत्तो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 61]

— ***उत्तराध्ययन - 4/10***

आत्मरक्षक महर्षि अप्रमत्त होकर विचरण करें ।

16. आजीवन गुणाराधन

कंखे गुणो जाव सरीर भेए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 62]

— ***उत्तराध्ययन 4/13***

जबतक जीवन है, (शरीर भेद न हो) सद्गुणों की आराधना करते रहना चाहिए ।

17. नीति-सूत्र

जिण्णे भोअण मत्तेओ, कविलो पाणिणं दया ।
विहस्सई रविस्ससो, पंचालो थीसु मद्दवं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 70]

— ***आवश्यक कथा १ अ.***

— ***आवश्यकमलयगिरि***

— ***आचारांग चूर्णि***

पहले खाए हुए का पाचन होने के बाद ही खाओ, प्राणियों पर दया रखो, कहीं पर भी विश्वास मत रखो और स्त्री पर कोमल रहो ।

18. संयम चतुष्क

चउव्विहे संजमे-मणसंजमे, वतिसंजमे,
कायसंजमे उवकरण संजमे ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 87]

— *स्थानांग - 4/4/2/310*

मनसंयम, वचनसंयम, शरीरसंयम और उपकरण संयम - ये संयम के चार प्रकार हैं ।

19. पंचविध-चारित्र

पंचविहे संजमे पन्नते – तं जहा – सामातित संजमे, छेदोवट्ठावणिय संजमे, परिहारविसुद्धित संजमे, सुहुम संपराय संजमे, अहक्खाय संजमे ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 88]

— *स्थानांग 5/5/3/428*

संयम पाँच प्रकार का है - सामायिक संयम, छेदोपस्थापनीय संयम, परिहारविशुद्धि संयम, सूक्ष्मसंपराय संयम और यथाख्यात संयम ।

20. संयम से पापनिरोध

संजमेण अणण्हयत्तं जणयइ ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 89]

— *उत्तराध्ययन 29/28*

संयम से जीव आस्रव-पाप का निरोध करता है ।

21. अभयदाता

अभयदाया भवाहिय ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 100]

— *उत्तराध्ययन 18/11*

अभयदाता बनो ।

22. आसक्ति क्यों ?

जयासव्वं परिच्चज्ज गन्तव्वमवसस्सते ।
अणिच्चे जीवलोगम्मि किं रज्जम्मि पसज्जसी ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 100]

— *उत्तराध्ययन 18/12*

जब तुझे सब कुछ छोड़कर अवश्य चले जाना है तब इस अनित्य मृत्युलोक में तूं क्यों राज्य में आसक्त हो रहा है ?

23. तपाचरण

तवं चरे ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 100]

– ***उत्तराध्ययन 18/15***

तपाचरण करो ।

24. अपना अपना पाथेय

तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं ।
कम्मुणा तेण संजुत्ते, गच्छती तु परं भवं ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 100]

– ***उत्तराध्ययन 18/17***

उस मरनेवाले व्यक्ति ने जो भी शुभाशुभकर्म किया है उसीके साथ वह परलोक में चला जाता है ।

25. हिंसासक्ति क्यों ?

अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 100]

– ***उत्तराध्ययन 18/11***

यह संसार अनित्य है, फिर क्यों हिंसा में आसक्त होते हो ?

26. विद्युत्वत् चंचल जीवन

जीवियं चेव रूवं च, विज्जुसंपाय-चंचलं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 100]

– ***उत्तराध्ययन 18/13***

यह जीवन और रूप-सौन्दर्य बिजली की चमक के समान चंचल है ।

27. **जीवनसाथी**

दाराणि य सुया चेव, मित्ता य तह बंधवा ।
जीवन्तमणुजीवन्ति, मयं नाणुवयंति य ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 100]

— ***उत्तराध्ययन 18/14***

स्त्री, पुत्र, मित्र और बन्धुजन सभी जीते जी के साथी हैं । मरने के बाद कोई किसी के साथ नहीं चलता ।

28. **पापाचारी**

पडंति नरए घोरे जे नरा पावकारिणो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 103]

— ***उत्तराध्ययन 18/25***

जो पापकारी मनुष्य हैं, वे घोर नर्क में पड़ते हैं ।

29. **धर्माचारी**

दिव्वं च गइं गच्छंति चरित्ता धम्ममारियं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 103]

— ***उत्तराध्ययन 18/25***

चारित्रधर्म का आचरण करनेवाला दिव्यगति में जाता है ।

30. **झूठ निरर्थक**

मुसाभासा निरत्थिया ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 103]

— ***उत्तराध्ययन 18/26***

मिथ्याभाषा निरर्थक है ।

31. **रूचि-स्वच्छंदता-वर्जन**

नाणारुइं च छन्दं च,
परिवज्जेज्ज संजए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 103]

— *उत्तराध्ययन 18/30*

संयमी साधक विभिन्न रूचि और स्वच्छंदता को छोड़ दें ।

32. अक्रिया-वर्जन

अकिरियं परिवज्जए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 104]

— *उत्तराध्ययन 18/33*

निष्क्रियता को छोड़ो ।

33. श्रेष्ठ त्यागी

सुपरिच्चाई दमं चरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 104]

— *उत्तराध्ययन 18/43*

श्रेष्ठ त्यागी इन्द्रिय-दमन रूप धर्म का आचरण करें ।

34. धर्माचरण

धम्मं चर ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 104]

— *उत्तराध्ययन 18/33*

धर्माचरण करो ।

35. शूर, पराक्रमी

सूरा दढपरक्कमा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 105]

— *उत्तराध्ययन 18/52*

शूरवीर दृढ़ पराक्रमशील होते हैं ।

36. जिनवाणी: कर्मकैंची

अच्चन्त नियाणखमा, सच्चा मे भासिया वई ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 105]

— *उत्तराध्ययन 18/53*

वीतराग द्वारा भाषित यह वाणी अत्यन्त निदान क्षमा है अर्थात् कर्म-काटने में अत्यन्त समर्थ है।

37. सिद्धात्मा

सव्वसंग विणिम्मुक्के सिद्धे भवइ नीरए ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 105]

– *उत्तराध्ययन 18/54*

सभी तरह के बंधनों से मुक्त होती हुई सिद्धात्मा सर्वथा कर्मरहित हो जाती है।

38. सत्-लक्षण

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 128]

– *तत्त्वार्थाधिगमसूत्र 5/29*

जो उत्पन्न, व्यय और ध्रौव्य (स्थिर) से युक्त है, वह 'सत्' (पदार्थ) कहलाता है।

39. सन्तोष-सुख

संतोष परमं सौख्यम् ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 146]

– *हिंगुल प्रकरण 1/14*

सन्तोष ही परम (सर्वश्रेष्ठ) सुख है।

40. परिचय-वर्जन

जो संथवं न करेइ स भिक्खू ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 146]

– *उत्तराध्ययन 15/10*

जो गृहस्थ से परिचय नहीं करता है, वही भिक्षु है।

41. जन्म-दुःख

जम्मण सरिसं न विज्जए दुक्खं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 163]

— *मूलाराधना 1669 व आवश्यकनिर्युक्ति 1546*

जन्म के समान कोई दुःख नहीं है ।

42. जीव और शरीर भिन्न

अन्नं इमं सरीरं, अन्नो जीवुत्ति एव कयबुद्धी ।
दुक्ख-परिकिलेस, छिंद ममत्तं सरीराओ ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 163]

— *आवश्यकनिर्युक्ति 6/1566*

यह शरीर अन्य है, आत्मा अन्य है । साधक इस तत्त्वबुद्धि के द्वारा दुःख एवं क्लेशजनक शरीर की ममता का त्याग करे ।

43. मृत्यु-भय

नत्थि भयं मरणसमं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 163]

— *मूलाराधना - 1669*
एवं आवश्यक निर्युक्ति 1546

मृत्यु के समान कोई भय नहीं है ।

44. तप-अनुमोदक

जह्य तवस्सी धुणुते तवेणं,
कम्मं तह्य जाण तवोऽणुमंता ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 180]

— *बृहत्कल्पभाष्य - 4401*

जैसे तपस्वी तप के द्वारा कर्मों को धुन डालता है वैसे ही तप का अनुमोदन करनेवाला भी ।

45. एक म्यानः दो तलवार

जो एति एक्कं न उ एक्कलेणं,
ठवेंति तं सूर गहस्स पासे ।
एक्कम्मि खंभम्मि न मत्तहत्थी,
वज्झन्ति वग्घा न य पंजरे दो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 181]

— ***बृहत्कल्पभाष्य 4410***

एक (झगड़ालु) को दूसरे (झगड़ालु) के साथ नियुक्त नहीं करना चाहिए, किन्तु शान्त के साथ रखना चाहिए । जैसे कि एक खंभे से दो मदोन्मत्त हाथियों को नहीं बाँधा जाता और न एक पिंजरे में दो सिंह रखे जाते हैं ।

46. संबोधि अतिदुष्कर

इतो विद्धंसमाणस्स, पुणो संबोहि दुल्लभा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 206]

— ***सूत्रकृतांग*** *- 1/15/18*

जो आत्माएँ अज्ञान के कारण यहाँ से अब पथभ्रष्ट हो चुकी हैं, उन्हें फिर भविष्य में सम्बोधि मिलना अतिकठिन है ।

47. निकृष्ट

काउं च णाणुतप्पइ, एरिसओ णिक्किवो होइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 225]

— ***बृहदावश्यकभाष्य 1319***

अपने द्वारा किसी प्राणी को कष्ट पहुँचने पर भी, जिसके मनमें पश्चात्ताप नहीं होता, उसे निकृष्ट-निर्दय कहा जाता है ।

48. ज्ञान दुष्कर

दुक्खं लब्भइ नाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 227]

— ***पञ्चवस्तुक सटीक 4 द्वार***

ज्ञान कठिनाईपूर्वक प्राप्त होता है ।

49. सहवास-प्रकार

चउव्विहे संवासे पणत्ते-तं जहा
देवेणाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति,
देवे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति,
रक्खसे णाममेगे देवीए सद्धिं संवासं गच्छति,
रक्खसे णाममेगे रक्खसीए सद्धिं संवासं गच्छति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 238]

— ***स्थानांग 4/4/4/353 [4]***

चार प्रकार के सहवास हैं-
देव का देवी के साथ-शिष्ट भद्रपुरुष, सुशीला भद्र नारी ।
देव का राक्षसी के साथ-शिष्ट पुरुष, कर्कशा नारी ।
राक्षस का देवी के साथ-दुष्ट पुरुष, सुशीला नारी ।
राक्षस का राक्षसी के साथ-दुष्ट पुरुष, कर्कशा नारी ।

50. वैराग्य से धर्मश्रद्धा

संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 242]

— ***उत्तराध्ययन 29/3***

वैराग्य-भाव से सर्वश्रेष्ठ धर्मश्रद्धा उत्पन्न होती है ।

51. सत्य-प्रकार

चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते-तंजहा -
काउज्जुयया भासुज्जुयया भावुज्जुयया
अविसंवायणा जोगे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 प

— ***स्थानांग 4/4/1/254***

सत्य जीवन में चार प्रकार से प्रतिष्ठित होता है-काया की सरलता से, भाषा की सरलता से, भावों की सरलता से और परस्पर विरुद्ध वचन या विसंगति न होने से ।

52. विश्व-बंधुत्व

सदा सच्चेण संपण्णे, मेत्तिं भूतेहिं कप्पते ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 272]

— *सूत्रकृतांग 1/15/3*

सदा सत्य से सम्पन्न होकर विश्व के प्राणीमात्र के साथ मैत्रीभाव रखो ।

53. सत्य में स्थिर

सच्चंसि धिर्तिं कुव्वहा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 273 **एवं** पृ. 889]

— *आचारांग - 1/3/2/11*

सत्य में स्थिर हो ।

54. सत्य सर्वश्रेष्ठ

वरं कूपशताद्वापी, वरं वापी शतात्क्रतुः ।
वरं क्रतुशतात्पुत्रः, सत्यं पुत्रशताद्वरम् ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 273]

— *महाभारत 74/102 आदिपर्व*

सौ कुँए खुदवाने की अपेक्षा एक बावड़ी बनवाना उत्तम है, सौ बावड़ियों की अपेक्षा एक यज्ञ कर लेना उत्तम है । सौ यज्ञ करने की अपेक्षा एक पुत्र को जन्म देना उत्तम है और सौ पुत्रों की अपेक्षा भी सत्य का पालन श्रेष्ठ है ।

55. सचाई को परख

पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 273]

— *आचारांग 1/3/3/127*

हे मानव ! एकमात्र सत्य को ही अच्छी तरह जान ले, परख ले ।

56. परनारी माता है, परधन मिट्टी

मातृवत् परदारांश्च परद्रव्याणि लोष्ठवत् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 273]

— ***आपस्तम्बस्मृति 10/11***

पराई स्त्री को माता के समान और पराए धन को लोह तुल्य समझो ।

57. द्रष्टा कौन ?

आत्मवत् सर्वभूतानि य पश्यति स पश्यति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 273]

— ***आपस्तम्बस्मृति 10/11***

जो सब प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखता है वस्तुत: वही द्रष्टा है ।

58. सत्यवादी, मृत्युविजेता

सच्चस्स आणाए से उवट्ठिए मेधावी मारं तरति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 273]

— ***आचारांग - 1/3/3/127***

जो मेधावी साधक सत्य की आज्ञा में उपस्थित रहता है, वह मृत्यु के प्रवाह को तैर जाता है ।

59. परपीड़क सत्य न बोले

न सत्यमपि भाषेत, परपीड़ाकरं वचः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 273]

— ***योगशास्त्र - 2/61***

दूसरों को पीड़ा हो, ऐसा सत्य-वचन भी मत बोलो ।

60. सज्जन-दुर्जन-रसना

दुर्जनस्य रसना सनातनीं,
सगतिं न परुषस्य मुञ्चति ।

सज्जनस्य तु सुधातिशायिनः;
कोमलस्य वचनस्य केवलम् ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 278]
– *द्वात्रिंशत्-द्वात्रिंशिका 32/3*

दुर्जन की जीभ कभी कठोरता का साथ नहीं छोड़ती है और सज्जन पुरुष के पास तो अमृत से भी अधिक कोमल वचन रहते हैं ।

61. स्वाध्याय

सुष्ठु आ मर्यादया अधीयते इति स्वाध्यायः ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 280]
– *स्थानांगटीका 5/3/465*

सत्शास्त्र को मर्यादापूर्वक पढ़ना स्वाध्याय है ।

62. स्वाध्याय कर्तव्य

चतुष्कालं स्वाध्यायः कर्तव्यः ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 286]
– *निशीथ चूर्णि 19 उ*

संयमी साधक को चार समय (4 प्रहर) स्वाध्याय करना चाहिए ।

63. सविधि स्वाध्याय

पढणाई सज्झायं, वेरग्गणिबंधणं कुणइ विहिणा ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 292]
– *धर्मरत्नप्रकरण - 44*

जो विधिपूर्वक पाँच प्रकार का स्वाध्याय करता है, वह वैराग्य का बन्धन करता है ।

64. स्वाध्याय से कर्मक्षय

बहुभवे संचिययं पिहु सज्झाएणं खणे खवइ ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 292]
– *चंदविज्जापयन्ना – 91*

साधक करोड़ों भवों के संचित कर्म को स्वाध्याय के द्वारा क्षणभर में क्षय कर देता है ।

65. स्वाध्याय से साक्षात्कार

स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 292]

— ***पातञ्जल योगदर्शन 2/44***

स्वाध्याय से, इष्ट देवता की भलीभाँति प्राप्ति (साक्षात्कार) हो जाती है ।

66. स्वाध्याय से कर्मक्षय

सज्झाएणं नानावरणिज्जं कम्मं खवेइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 292]

— ***उत्तराध्ययन - 29/20***

स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है ।

67. पंचविध-स्वाध्याय

सज्झाए पंचविहे पन्नत्ते, तं जहा - वायणा, पडिपुच्छणा, परियट्टणा, अणुप्पेहा, धम्मकहा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 292-280]

— ***भगवती 25/7/2/236***

स्वाध्याय पाँच प्रकार का है - वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा ।

68. स्वाध्याय सर्वोत्तम

स्वाध्याय समं तपो नास्ति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 292]

— ***दसपयन्नामूलसटीक***

स्वाध्याय के समान कोई तप नहीं है ।

69. सप्तभङ्गी-स्वरूप

प्रश्नावशादेकस्मिन् वस्तुतुल्यविरोधेन स्याल्लाञ्छिता विधिनिषेधकल्पनांसप्तभङ्गी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 315 - 316]

— ***जैनसिद्धान्त दीपिका 9/16***

प्रश्नकर्ता के अनुरोध के एक वस्तु में अविरोध रूप से 'स्यात्' शब्दयुक्त जो विधिनिषेध की कल्पना की जाती है, उसे 'सप्तभङ्गी' कहते हैं ।

70. श्रेष्ठ में श्रेष्ठतम

नार्हतः परमोदेवो, न मुक्तेः परमं पदम् ।
न शत्रुञ्जयात्तीर्थं, श्री कल्पान्न परं श्रुतम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 333]

— ***कल्पसुबोधिका टीका 1/1***

अरिहंत परमात्मा से बढ़कर कोई देव नहीं, मुक्ति से बढ़कर कोई पद नहीं, श्री शत्रुञ्जयतीर्थ से बढ़कर कोई तीर्थ नहीं, और श्रीकल्पसूत्र से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं ।

71. सत्सङ्गः महौषधि

सङ्गसर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते ।
स सद्भि सह कर्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 337]

— ***हितोपदेश 4/90***

संगति का सर्वथा त्याग करना चाहिए । यदि संगति का सर्वथा त्याग सम्भव न हो तो सज्जनों के साथ संगति करनी चाहिए, क्योंकि सत्संगत ही एक महान् औषध है ।

72. सदाचार

लोकापवादभीरूत्वं, दीनाभ्युद्धरणादरः ।
कृतज्ञता सुदाक्षिण्यं, सदाचारः प्रकीर्तितः ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 337]

— *योगबिन्दु 126*

प्रामाणिक लोगों के अपवाद से भय, सहायतापेक्षीजनों को सहयोग करने में उत्साह, दूसरों के द्वारा अपने प्रति किए गए उपकार या सहयोग के लिए कृतज्ञभाव और सुन्दर दाक्षिण्य-ये सब सदाचार में समाविष्ट होते हैं।

73. सदाचाराधीन सर्वगुण

सर्वत्र निंदासंत्यागो, वर्णवादश्च साधुषु ।
आपद्यदैन्यमत्यन्तं, तद्वत् संपदि नम्रता ॥
प्रस्तावे मितभाषित्वमविसंवादनं तथा ।
प्रतिपन्नक्रिया चेति, कुलधर्मानुपालनम् ॥
असद्व्ययपरित्यागः, स्थाने चैव क्रिया सदा ।
प्रधान कार्ये निर्बन्धः, प्रमादस्य विवर्जनम् ॥
लोकाचारानुवृत्तिश्च, सर्वत्रौचित्यपालनम् ।
प्रवृत्तिर्गर्हिते नेति, प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 337-818]

— *योगबिन्दु - 127-130*

सबकी निंदा का त्याग, साधु व सज्जनों की प्रशंसा, आपत्ति में साहस हिंमत तथा सुख में नम्रता रखना, प्रसंगोचित्त बोलना, किसी से भी विरोध न करना, अंगीकृत-कर्म करना, कुलधर्म का पालन, फिजूल खर्ची न करना, योग्य स्थान पर योग्य क्रि या करना, उत्तम कार्यों में लगे रहना, प्रमाद का त्याग, लोकाचार का अनुसरण, सब जगह औचित्य का पालन करना और प्राणों के कण्ठ में आने पर भी निंदनीय कार्य नहीं करना - इत्यादि गुणों का समावेश 'सदाचार' के अन्तर्गत होता है।

74. सत्सङ्ग-महत्त्व

यदि सत्सङ्गनिरतो, भविष्यसि भविष्यसि ।
अथासज्जनगोष्ठीषु, पतिष्यसि पतिष्यसि ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 337]

— *हितोपदेश मित्रलाभ - 192*

— *धर्मबिन्दुसटीक 24*

यदि सत्संग किया तो ऐश्वर्यवान् बनोगे और दुष्ट-सङ्गति में पड़े तो पतित होकर कष्ट पाओगे। अत: सत्सङ्ग करो।

75. विकारोन्मूलन

ध्यानवृष्टे र्दयानद्याः शमपूरे प्रसर्पति ।
विकारतीरवृक्षाणां, मूलादुन्मूलनं भवेत् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 397]

— *ज्ञानसार 6/4*

ध्यानवृष्टि से दयारूपी सरिता में जब उपशम रूप पूर बढ़ता है तब तट पर उगे हुए विकार रूप वृक्ष जड़मूल से उखड़ जाते हैं।

76. योगारूढ मुनि

आरूरूक्षुर्मुनिर्योगं श्रयेद् बाह्यक्रियामपि ।
योगारूढः शमादेव शुध्यत्यन्तर्गतक्रियः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 397]

— *ज्ञानसार 6/3*

योगाभ्यासी मुनि बाह्य क्रिया का भी आदर करते हैं और योगारूढ हुए अन्तर क्रियावाले मुनि शम से स्वयं को शुद्ध करते हैं।

77. शम-सुधा-सिंचित

शमसूक्तसुधासिक्तं येषां नक्तं दिनं मनः ।
कदाऽपि ते न दह्यन्ते, रागोरगविषोर्मिभिः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 398]

— *ज्ञानसार 6/7*

शम के सुभाषितरूपी अमृत से जिनका मन रातदिन सिञ्चित है, वे रागरूपी सर्प की विषैली फुत्कार से नहीं जलते।

78. शान्तात्मा

ज्ञानध्यानतप:शील-सम्यक्त्वसहितोऽप्यहो ।
तं नाप्नोति गुणं साधु र्यं, प्राप्नोति शमाऽन्वितः ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 398]

— *ज्ञानसार 6/5*

ज्ञान-ध्यान, तप-शील और सम्यक्त्व युक्त साधु जितना आत्म-लाभ प्राप्त नहीं कर सकता, उतना शान्त आत्मा कर सकती है।

79. संपदा की जयपताका कहाँ ?

गर्जज्ज्ञानगजोत्तुरङ्ग रंगद्ध्यानतुरङ्गमाः ।
जयन्ति मुनिराजस्य, शमसाम्राज्यसम्पदः ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 398]

— *ज्ञानसार - 6/8*

जहाँ गर्जन करते हुए ज्ञानरूपी गजराज और इठलाते-इतराते ध्यानरूपी अश्वों की भरमार है, ऐसे मुनिरूप नरेश के शमरूपी साम्राज्य में सर्वदा सुख-शान्ति और सम्पदा की जयपताका निरन्तर फहराती रहती है।

80. श्रमणः सुमन

तो समणो जइ सुमणो ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 410]

— *अनुयोगद्वार - 599/132*

जो निर्मल मनवाला है, वह श्रमण है।

81. सच्चा श्रमण

जह मम ण पियं दुक्खं जाणिय एमेव सव्वजीवाणं ।
न हणइ न हणावेइ य सममणती तेण सो समणो ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 410]

— *अनुयोगद्वार 599/129*

जैसे मुझे दुःख प्रिय नहीं है, वैसे सभी जीवों को दुःख प्रिय नहीं है। जो ऐसा जानकर न स्वयं हिंसा करता है, न किसी से हिंसा करवाता है, वह समत्वयोगी ही सच्चा 'श्रमण' है।

82. श्रमण कौन ?

तो समणो जइ सुमणो, भावेण य जइण होइ पावमणो ।
सयणे अ जणे य समो, समो य माणाऽवमाणेसु ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 410]

— ***अनुयोगद्वार 599/132***

जो मन से निर्मल मनवाला है । संकल्प से भी कभी पापोन्मुख नहीं होता । स्वजन तथा परजन में, मान एवं अपमान में सदा सम रहता है । वह "श्रमण" होता है ।

83. श्रमण-व्यक्तित्व

उरग गिरि जलण सागर नह तल तरूगण समो य जो होइ ।
भमर मिग धरणि जल रूह-रवि पवण समो य सो समणो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 410]

— ***अनुयोगद्वार 599/131***

श्रमण वह है, जो सर्पवत् परकृत निवास में रहता है, परिषहों में पर्वतवत् निष्प्रकम्प रहता है । अग्निवत् तप के तेज से युक्त होता है एवं सूत्रार्थरूप इंधन से तृप्त नहीं होता । समुद्रवत् गंभीर ज्ञानादि रत्नों का घर एवं अपनी मर्यादा को नहीं तोड़नेवाला होता है । आकाशवत् निरालम्बी होता है । वृक्षसमूहवत् सुख-दु:ख में समभावी होता है । भ्रमरवत् अनियत वृत्ति से जीवन निर्वाह करता है । मृगवत् संसार से भयभीत रहता है । पृथ्वीवत् सब कुछ सहन करता है । सूर्यवत् सबको समान रूप से प्रकाश देता है । कमलवत् निर्लेप रहता है एवं पवनवत् अप्रतिबद्ध विहारी होता है ।

84. श्रमण

सयणे य जणे य समो, समो य माणावमाणेसु ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 410]

— ***अनुयोगद्वार 599/132***

जो स्वजन तथा परजन में एवं मान-अपमान में सदा सम रहता है, वह 'श्रमण' होता है ।

85. तप-निर्जरा

अणण्हये तवे चेव ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 412]

— ***भगवती 2/5/26***

तपश्चरण से पूर्वबद्ध कर्मों का नाश करो ।

86. श्रमणोपासक-प्रकार

चत्तारि समणो वासगा पन्नत्ता तं जहा-
अद्दागे समाणे, पअग समाणे,
खाणु समाणे, खरकंटय समाणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 414]

— ***स्थानांग 4/4/3/322***

श्रमणोपासक की चार कोटियाँ हैं -
दर्पण के समान - स्वच्छ हृदय ।
पत्ता के समान - अस्थिर हृदय ।
स्थाणु के समान - मिथ्याग्रही ।
तीक्ष्ण कंटक के समान - कटुभाषी ।

87. श्रमणोपासक-श्रेणी

चत्तारि समणो वासगा पण्णत्ता-अम्मापित्ति समाणे,
भातिसमाणे, मित्तसमाणे, सवत्ती समाणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 414]

— ***स्थानांग 4/4/3/322***

श्रमणोपासक 4 प्रकार के होते हैं -
माता-पिता के समान ।
भ्राता के समान ।
मित्र के समान ।
सपत्नी के समान ।

88. तत्त्वज्ञानी, समदर्शी

विद्या विनयसम्पन्ने, ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च, पण्डिताः समदर्शिनः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 416]
— ***भगवद्गीता 5/18***

जो तत्त्वज्ञानी हैं, वे विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ते तथा चाण्डाल में सर्वत्र समदर्शी होते हैं । भेद-बुद्धि नहीं रखते ।

89. जितेन्द्रिय

सव्विंदियऽनिव्वुडे पयासु ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 428]
— ***सूत्रकृतांग 1/10/4***

मुनि स्त्रियों से सम्बद्ध पंचेन्द्रिय विषयों में प्रवृत्त होने से अपनी समस्त इन्द्रियों को रोककर जितेन्द्रिय बने ।

90. संयम-पथ-विचरण

चरे मुणी सव्वतो विप्पमुक्के ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 428]
— ***सूत्रकृतांग 1/10/4***

बाह्याभ्यन्तर सभी आसक्ति-बन्धनों से मुक्त होकर साधु संयम-पथ में विचरण करें ।

91. अदत्त-वर्जन

अदिण्ण मन्नेसु य णो गहेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 428]
— ***सूत्रकृतांग - 1/10/2***

बिना दी हुई वस्तुओं को नहीं लेना चाहिए ।

92. आत्मतुल्यता

आयतुले पयासु ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 428]

– *सूत्रकृतांग 1/10/3*

प्राणियों के प्रति आत्म-तुल्य भाव रखो ।

93. समदर्शी

सव्वं जगं तू समयाणुपेही ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 429]

– *सूत्रकृतांग 1/10/7*

हे आत्मज्ञ ! समग्र विश्व के प्रति तू समतापूर्वक देखनेवाला हो ।

94. अज्ञानी का दुर्व्यवहार

एतेसु बाले य पकुव्वमाणे,

आवट्टती कम्मसु पावएसु ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 429]

– *सूत्रकृतांग - 1/10/5*

पृथ्वी, पानी आदि जीवों के साथ दुर्व्यवहार करता हुआ बाल (अज्ञानी) जीव पाप कर्मों में आसक्त होता है ।

95. हिंसा-कथा-वर्जन

हिंसण्णितं वा ण कहं करेज्जा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 429]

– *सूत्रकृतांग - 1/10/10*

आत्महितैषी हिंसा पैदा करनेवाली कथा न करें ।

96. प्रियाप्रिय निरपेक्ष

पियमप्पियं कस्सइ नो करेज्जा ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 429]

– *सूत्रकृतांग 1/10/7*

किसी का भी प्रिय-अप्रिय मत करो ।

97. जीव-हिंसा-निवृत्ति

पाणातिपाता विरते ठितप्पा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 429]

— *सूत्रकृतांग - 1/10/6*

स्थितप्रज्ञ आत्मा जीव-हिंसा से दूर रहे ।

98. आय-वृद्धि से दूर

आयं न कुज्जा इह जीवियट्ठी ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 429]

— *सूत्रकृतांग 1/10/3*

इस लोक में चिरकाल तक जीने की इच्छा से धन की आमदनी (आस्रवों की आयवृद्धि) न करें ।

99. भावसमाधि से दूर कौन ?

जहाहि वित्तं पसवो य सव्वे,
जे बंधवा जे य पिता य मित्ता ।
लालप्पत्ती सो विय एइ मोहं,
अन्ने जणा तंसि हरंति वित्तं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 430]

— *सूत्रकृतांग 1/10/19*

समाधिकामी व्यक्ति धन और पशु आदि सब पदार्थों (ममत्व) का त्याग करे । जो बाँधव और प्रियमित्र हैं, वे वस्तुत: कुछ भी उपकार नहीं करते, तथापि मनुष्य इनके लिए शोकाकुल होकर विलाप करता है और मोह को प्राप्त होता है । (उनके मर जाने पर) उनके उनके द्वारा अत्यन्त क्लेश से उपार्जित धन का दूसरे लोग ही हरण कर लेते हैं ।

100. अशुभ लेश्या-त्याग

लेसं समाहट्टु परिवएज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 430]

— *सूत्रकृतांग 1/10/15*

अशुभ विचार का परित्याग करे।

101. वैरवर्धन

पवड्ढती वेरमसंजतस्स ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 430]

— ***सूत्रकृतांग - 1/10/17***

वस्तुत: असंयती के लिए वैर ही बढ़ता है।

102. चींटी संचै, तीतर खाय

अन्ने जणा तंसि हरंति वित्तं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 430]

— ***सूत्रकृतांग - 1/10/19***

आरम्भासक्त व्यक्ति के धन का दूसरे लोग ही हरण कर लेते हैं।

103. समाधिप्राप्त भिक्षु

अच्चावएसु विसएसु ताई णिस्संसयं भिक्खू समाहिपत्ते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 430]

— ***सूत्रकृतांग - 1/10/13***

महान् विपदाओं को लानेवाले और महान् दु:ख को पैदा करनेवाले विषयों से जो अपनी रक्षा करता है, नि:सन्देह वह समाधि प्राप्त भिक्षु है।

104. मानव-रुचि विभिन्न

पूढो य छंदा इह माणवाउ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 430]

— ***सूत्रकृतांग - 1/10/17***

इस संसार में मनुष्यों की रुचियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं।

105. पाप से दूर

सीहं जहा खुद्दमिगा चरंता,
दूरे चरंती परिसंकमाणा ।
एवं तु मेधावि समिक्ख धम्मं,
दूरेण पावं परिवज्जएज्जा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 431]

— *सूत्रकृतांग 1/10/20*

जैसे मृगशावक सिंह से भयभीत होकर दूर-दूर रहते हैं, वैसे ही बुद्धिमान् धर्म को जानकर पाप से दूर रहे।

106. पाप-निवृत्त आत्मा

पावातो अप्पाण निवट्टएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 431]

— *सूत्रकृतांग 1/10/21*

पाप कर्म से अपनी आत्मा को लौटा लो।

107. मिथ्याभाषण-वर्जन

मुसं न बूया मुणि अत्तगामी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 431]

— *सूत्रकृतांग - 1/10/22*

आत्महितकामी मुनि असत्य न बोले।

108. पापकर्म कैसे ?

वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 431]

— *सूत्रकृतांग - 1/10/21*

पापकर्म वैरानुबंधी और महाभयानक हैं।

109. पापनिदान

असुहाण कम्माणं निज्जाणं पावगं इमं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 460]

— *उत्तराध्ययन - 21/9*

अशुभ कर्मों का यह पापरूप निदान - (अन्तिम फल) पाप ही है।

110. रुचि-भिन्नता

अणेगछंदामिह माणवेहिं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 461]

— *उत्तराध्ययन - 21/16*

इस संसार में मनुष्य के विचार, रुचियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं।

111. राष्ट्रधर्म

कालेण कालं विहरेज्ज रिट्ठे,
बलाबलं जाणिय अप्पणो उ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 461]

— *उत्तराध्ययन 21/14*

अपनी शक्ति को ठीक तरह से पहचान कर यथावसर यथोचित कर्तव्य का पालन करते हुए राष्ट्र में विचरण करें।

112. सिंह-शौर्य

सीहो व सद्देण न संतसेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 461]

— *उत्तराध्ययन 21/14*

सिंह के समान निर्भीक रहे, केवल शब्दों/आवाजों से भयमीत न हो।

113. प्रिय-अप्रिय

पियमप्पियं सव्वं तितिक्खएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 461]

— *उत्तराध्ययन 21/15*

प्रिय हो या अप्रिय, सबको समभाव से सहन करना चाहिए।

114. एक में मन

न सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 461]

— *उत्तराध्ययन 21/15*

हर कहीं, हर किसी वस्तु में अर्थात् सर्वत्र मन को मत लगाओ।

115. महर्षि

अणुन्नए ना वणए महेसी,
न या वि पूयं गरहं च संजए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 461]
— *उत्तराध्ययन 21/20*

महर्षि, पुजा-प्रशंसा सुनकर न गर्व से फूले और न निन्दा सुनकर अपने आपको दीन-हीन माने ।

116. इन्द्रिय-निग्रह

चरेज्ज भिक्खु सुसमाहि इंदिए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 461]
— *उत्तराध्ययन - 21/13*

भिक्षु समग्र इन्द्रियों को सुसमाहित करता हुआ विचरण करें ।

117. जिनानुगामी

चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विदू ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 461]
— *उत्तराध्ययन 21/12*

बुद्धिमान् मनुष्य जिनोपदिष्ट धर्म का आचरण करें ।

118. दयाभाव

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 461]
— *उत्तराध्ययन - 21/13*

सभी जीवों के प्रति दयाभाव रखे ।

119. असभ्य वचन-वर्जन

न असब्भमाहु ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 461]
— *उत्तराध्ययन - 21/14*

असभ्यतापूर्वक मत बोलो ।

120. श्रमण कैसा हो ?

खंतिक्खम मे संजय बंभयारी ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 461]

— *उत्तराध्ययन - 21/13*

श्रमण क्षमा से दुर्वचनादि सहन करनेवाला संयमशील एवं ब्रह्मचारी हो ।

121. कर्म-रज

रयाइं खेवेज्ज पुरा कडाइं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 461]

— *उत्तराध्ययन 21/18*

पूर्वकृत कर्मों की रज को दूर करो ।

122. परिषह-सहिष्णु

मेरूव्व वाएण अकंपमाणे,
परीसहे आयगुत्ते सहेज्जा ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 461]

— *उत्तराध्ययन - 21/19*

विचक्षण श्रमण वायु से अकम्पित मेरुपर्वत के समान आत्मगुप्त बनकर कष्टों को सहन करें ।

123. आत्मार्थी साधक कैसा ?

छिन्ने-सोए अममे अकिंचणे ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 461]

— *उत्तराध्ययन - 21/21*

आत्मार्थी शोकरहित, ममतारहित और अकिंचन धर्मवाला होवे ।

124. लोक-भाषा

तित्थ पणामं काउं, कहेइ साहारणेण सद्देणं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 472]

— *आवश्यकनिर्युक्ति - 1/566*

तीर्थंकरदेव पहले उपस्थित संघ को प्रणाम करके फिर जन-कल्याण के लिए लोक-भाषा में उपदेश देते हैं ।

125. सम्यग्दर्शन-प्राप्ति

निस्सग्गुवदेसरुइ-आणारुइ-सुत्त-बीयरुइमेव ।
अभिगमवित्थाररुइ किरिया संखेव धम्मरुइ ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 484]

— *उत्तराध्ययन - 28/16*

जीव को दस प्रकार से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है — निसर्गरुचि, उपदेशरुचि, आज्ञारुचि, सूत्ररुचि, बीजरुचि, अभिगमरुचि, विस्ताररुचि, क्रियारुचि, संक्षेपरुचि और धर्मरुचि ।

126. सम्यक्त्व से अपूर्व लाभ

अन्तोमुहुत्तमित्तंपि फासिअं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं ।
तेसिं अवड्ढपुग्गलपरियट्टो चेव संसारो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 487]

— *धर्मसंग्रह 2/31*

जो जीव अन्तर्मुहूर्त मात्र भी सम्यक्त्व स्पर्श कर लेते हैं, उन्हें केवल अर्धपुद्गल परावर्तन संसार शेष रह जाता है ।

¹7. मोक्ष-बीज

सम्मं च मोक्खबीयं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 489]

— *पञ्चवस्तुकसटीकद्वार - 4/1028*

सम्यक्त्व ही मोक्ष का बीज है ।

128. शाश्वतधर्मः अहिंसा

एस धम्मे सुद्धे णिइए सासए समिच्च लोयं
खेयण्णेहिं पवेइए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 489]

— ***आचारांग 1/4/1***

यह अहिंसा, शुद्ध, नित्य और शाश्वत धर्म है। आत्मज्ञ अर्हतों ने जीवलोक को जानकर इसका प्रतिपादन किया है।

129. लोकैषणा

जस्स णत्थि इमा जाई,

अण्णा तस्स कुतो सिया !

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 490]

— ***आचारांग - 1/4/1/133***

जिसे यह लोकैषणा बुद्धि नहीं है, उसे पाप-प्रवृत्तियाँ कैसे हो सकती हैं ?

130. यत्नशील धीर !

अहो य रातो य जतमाणे धीरे।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 490]

— ***आचारांग - 1/4/1/133***

हे धीर पुरुषों ! रातदिन मोक्ष-मार्ग की साधना में यत्नशील रहो !

131. अप्रमत्त

अप्पमत्तो परिव्वए।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 490]

— ***आचारांग - 1/5/2/156***

अप्रमत्त होकर विचरण करे।

132. यथातथ्य धर्म

तं आइत्तु ण णिहे ण णिक्खिवे जाणित्तु धम्मं जहा-तहा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 490]

— ***आचारांग - 1/4/1/133***

उस धर्म को यथातथ्य ग्रहणकर एवं जानकर न स्निग्ध हो, न विक्षिप्त।

133. विरक्ति

दिट्ठेहिं णिव्वेयं गच्छेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 490]

— ***आचारांग 1/4/1/133***

इष्ट-अनिष्ट इन्द्रिय-विषयों के प्रति विरक्त रहें ।

134. लोकैषणा-त्याग

नो लोगस्सेसणं चरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 490]

— ***आचारांग - 1/4/1/133***

लोकरुचि (गडरिया प्रवाह) के अनुसार आचरण मत करो ।

135. प्रमादी

पमत्ते बहिया पास ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 490]

— ***आचारांग - 1/4/1/133***

जो प्रमादी हैं, उन्हें सदा निर्ग्रन्थ धर्म से बाहर समझो ।

136. विषय-भोग

समेमाणा पलेमाणा पुणो पुणो जातिं पकप्पेंती ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 490]

— ***आचारांग - 1/4/1/133***

संसार के भोगों में आसक्त और लीन रहनेवाले मनुष्य बार-बार जन्म-मरण करते रहते हैं ।

137. भाव-प्रधानता

जे आसवा ते परिस्सवा ।
जे परिस्सवा, ते आसवा ॥
जे अणासवा ते अपरिस्सवा ।
जे अपरिस्सवा, ते अणासवा ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 491]

— *आचारांग - 1/4/2/134*

जो बन्धन के हेतु हैं, वे ही कभी मोक्ष के हेतु भी हो सकते हैं और जो मोक्ष के हेतु हैं, वे ही कभी बन्धन के हेतु भी हो सकते हैं ।

138. धर्माचरण

अट्टावि संता अदुवा पमत्ता अहासच्चमिणं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 491]

— *आचारांग - 1/4/2/134*

यह यथातथ्य है कि आर्त्त और विषयासक्त मनुष्य भी शुभ अवसर मिलने पर धर्म का आचरण कर सकते हैं ।

139. विज्ञ कौन ?

उवेहि णं बहिया य लोगं,
से सव्वलोगंमि जे केइ विण्णू ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 492]

— *आचारांग - 1/4/3/140*

जो अपने धर्म से विपरीत रहनेवाले लोगों के प्रति माध्यस्थता-तटस्थता रखता है, उद्विग्न नहीं होता है; वह समूचे जगत् के विद्वानों में अग्रणी विज्ञ है ।

140. धर्मविद् सरलमना

णरा मुतच्चा धम्मविदुत्ति अंजू ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 492]

— *आचारांग - 1/4/3/140*

देह के प्रति अनासक्त मनुष्य ही धर्म को जान पाते हैं और धर्मविद् ही सरलमना होते हैं ।

141. अनुचिन्तन

अणुवियि पास ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 492]

— *आचारांग - 1/4/3/140*

तू अनुचिन्तन करके देख ।

142. कर्म कैसे जलाएँ ?

जहा जुन्नाइं कट्ठाइं हव्वाबाहो पमत्थति
एवं अत्तसमाहिते अणिहे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 493]

— *आचारांग - 1/4/3/141*

जिसतरह अग्नि पुराने सूखे लकड़े को शीघ्र ही जला डालती है, उसीतरह सतत अप्रमत्त आत्मा तप से कर्मों को कुछ ही क्षणों में जला डालती है ।

143. तन-मन-कल्प

कसेहि अप्पाणं जरेहि अप्पाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 493]

— *आचारांग - 1/4/3/141*

अपने को कृश करो, तन-मन को हल्का करो ।

144. भोगलिप्त काया

एगमप्पाणं संपेहाए धुणे सरीरं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 493]

— *आचारांग - 1/4/3/141*

आत्मा को शरीर से पृथक् जानकर भोगलिप्त शरीर को धुन डालो ।

145. अन्यत्वानुप्रेक्षा

सदैकोऽहं न मे कश्चित् नाहमन्यस्य कस्यचित् ।
न तं पश्यामि यस्याहं नासौ भावीति यो मम ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 493]

— *आचारांगवृत्ति (शी.) पृ. 190 श्लोक-3*

मैं सदा अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है और मैं अन्य किसी का नहीं हूँ । मैं अपने आपको जिसका बता सकूँ, उसे नहीं देखता और जिसे मैं अपना कह सकूँ, उसे भी नहीं देखता ।

146. मैं सदा अकेला

विचिन्त्य मेतद् भवताऽहमेको,
न मेऽस्ति कश्चित् पुरतो न पश्चात् ।
स्वकर्मभिर्भ्रान्तिरियं ममैव,
अहं पुरस्तादहमेव पश्चात् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 493]
— *आचारांगवृत्ति (शी.) पृ. 190 श्लोक-2*

व्यक्ति यह चिन्तन करें - मैं अकेला हूँ, पहले भी मेरा कोई नहीं है। पीछे भी मेरा कोई नहीं है। अपने कर्मों के द्वारा मुझे दूसरों को अपना मानने की भ्रान्ति हो रही है। सचाई यह है कि पहले भी मैं अकेला ही हूँ और पीछे भी मैं अकेला ही हूँ।

147. अन्यत्व भावना

संसार एवायमनर्थसार कः कस्य कोऽत्र स्वजनः परो वा ।
सर्वे भ्रमन्तः स्वजनाः परे च भवन्ति भूत्वा न भवन्ति भूयः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 493]
— *आचारांगवृत्ति (शी.) पृ. 190 श्लोक-1*

इस संसार में अनर्थ ही सार वस्तु है। कौन किसका ? कहाँ अपना है और कौन किसका कहाँ पराया है ? ये स्वजन और परजन सारे भ्रमण कर रहे हैं। ये किसी समय स्वजन हो जाते हैं तो कभी परजन। एक समय ऐसा आता है जब न कोई स्वजन रहता है और न कोई परजन।

148. आज्ञाकाङ्क्षी

इह आणाकंखी पंडिते अणिहे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 493]
— *आचारांग - 1/4/3/141*

इस जिनशासन में आज्ञाप्रिय पंडित अनासक्त हो जाएँ।

149. क्रोध-त्याग

विगिंच कोहं अविकंपमाणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 493]

— ***आचारांग - 1/4/3/142***

साधक निष्कम्प होता हुआ क्रोध को छोड़ दे ।

150. कर्मशरीर को धुने

जे धुणाति समुस्सयं वसित्ता बंभचेरंसि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 494]

— ***आचारांग - 1/4/4/143***

तपस्वी साधक ब्रह्मचर्य में स्थित रहकर शरीर या कर्म-शरीर को तपश्चरणादि से धुन डालता है ।

151. मुक्ति में बाधक

विगिंच मंस सोणितं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 494]

— ***आचारांग - 1/4/4/143***

संयम और मोक्षमार्ग में विघ्न करनेवाले देह का मांस और रक्त कम करो ।

152. कर्मक्षय

जहा खलु झुसिरं कट्ठं, सुचिरं सुक्कं लहुं डहइ अग्गी ।
तह खलु खवंति कम्मं सम्मच्चरणे ठिया साहू ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 494]

— ***आचारांग निर्युक्ति 234 पृ. 128***

जिसप्रकार पुराने सूखे खोखले काठ को अग्नि शीघ्र ही जला डालती है वैसे ही निष्ठा के साथ आचार का सम्यक् पालन करनेवाला साधक कर्मों को नष्ट कर डालता है ।

153. कषाय-मुक्त

नो पडिसंजलेज्जासि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 494]

— ***आचारांग - 1/4/3/142***

तू कषायों से अपने आपको प्रज्ज्वलित मत कर ।

154. क्रोध-परिणाम

पूढो फासाइं च फासे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 494]

— ***आचारांग - 1/4/3/142***

क्रोधी मनुष्य विभिन्न प्रकार के कष्टों को भोगता है ।

155. भावी दुःख

दुक्खं च जाण अदुवाऽऽगमेस्सं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 494]

— ***आचारांग - 1/4/3/142***

भावी दुःखों को जानो ।

156. आयु सीमित

इमं निरूद्धाउयं संपेहाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 494]

— ***आचारांग - 1/4/3/142***

आयुष्य को परिमित समझो ।

157. उद्बोधन

लोयं च पास विफंदमाणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 494]

— ***आचारांग - 1/4/3***

तू दुःख से घबराए हुए लोक को, दुःख प्रतिकार के लिए इधर-उधर भागदौड़ करते हुए देख ।

158. वीरमार्ग दुर्गम

दूरणुचरो मग्गो वीराणं अनियट्टगामीणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 494]

— ***आचारांग - 1/4/4/143***

जीवनभर संयम-यात्रा में चलनेवाले (मोक्ष-यात्री) वीरों का मार्ग अत्यन्त दुरनुचर अर्थात् चलने में अतिकठिन है।

159. अमृतदर्शी

पलिछिंदिय बहिरगं च सोतं णिक्कम्मदंसी इह मच्चिएहिं।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 495]

— *आचारांग* - *1/4/4/145*

इन्द्रियों की बहिर्मुखी प्रवृत्ति को रोककर इस मरणधर्मा जगत् में तुम अमृतदर्शी बन जाओ।

160. प्रज्ञावान् कौन ?

से हु पन्नाणमंते बुद्धे आरंभोवरए।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 495]

— *आचारांग* - *1/4/4/145*

जो हिंसा से उपरत है, वही प्रज्ञावान् बुद्ध है।

161. त्रैकालिक निवृत्ति

जस्स णत्थि पुरे पच्छा, मज्झ तस्स कुओ सिया ?

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 495]

— *आचारांग* - *1/4/4/145*

जिसे न कुछ पहले है और न कुछ पीछे है, उसे बीचमें कहाँ से होगा ? (जिस साधक को न पूर्वभुक्त भोगों का स्मरण होता है और न भविष्य के भोगों की ही कोई कामना होती है, उसे वर्तमान में भोगासक्ति कैसे हो सकती है ?)

162. भोगासक्ति-परिणाम

जेण बंधं वहं घोरं परितावं च दारूणं।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 495]

— *आचारांग* - *1/4/4/145*

भोगासक्ति के कारण व्यक्ति बंध, वध, घोरपरिताप और दारूण दु:ख पाता है।

163. ज्ञानी कौन ?

कम्मुणा सफलं दट्ठुं ततो णिज्जाति वेदवी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 495]

— ***आचारांग* - 1/4/4/145**

कर्मों के फल को देखकर उनसे मुक्ति पानेवाला ही ज्ञानी है ।

164. सम्यक्त्व-लक्षण

प्रशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिक्याभि
व्यक्तिलक्षणसम्यक्त्वम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 497]

— ***तत्त्वार्थभाष्य* - 1/2**

प्रशम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिकता-ये पाँच सम्यक्त्व के लक्षण हैं ।

165. सम्यग्दृष्टि-लक्षण

सुस्सूस धम्मराओ गुरुदेवाणं जहा समाहीए ।
वेयावच्चे नियमो सम्मदिट्ठिस्स लिंगाइं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 512]

— ***योगशतक* - 14**

धार्मिक तत्त्व सुनने की इच्छा, धर्म के प्रति अनुराग, आत्म-समाधि, आत्म-शांति या श्रद्धा संभृत सुस्थिर भाव से नियमपूर्वक देव-गुरु की सेवा-ये सम्यग्दृष्टि जीव के लक्षण हैं ।

166. धर्मानुराग श्रेष्ठतम

धर्मरागोऽधिकोऽस्यैवं भोगिनः स्त्र्यादिरागतः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 512]

— ***योगबिन्दु* - 257**

भोगासक्त पुरुष को स्त्री आदि के प्रति जितना अनुराग होता है, सम्यग्दृष्टि पुरुष को धर्म के प्रति उससे कहीं अधिक अनुराग होता है ।

167. चपल साधक

कहं न कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 643]

— *दशवैकालिक - 2/1*

जो अपनी कामनाओं-इच्छाओं को रोक नहीं पाता, वह साधना कैसे कर पाएगा ?

168. विषय-चाट

वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 644]

— *दशवैकालिक 2/7 एवं उत्तराध्ययन 22/43*

वमन किए हुए (त्यक्त विषयों) को फिर से पीना चाहते हो ? इससे तो तुम्हारा मर जाना ही श्रेयस्कर है ।

169. शैवालवत् चंचल

जइ तं काहिसि भावं, जा जा दिच्छसि नारिओ ।
वाया विद्धोव्वहडो, अट्ठि-अप्पा भविस्ससि ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 644]

— *दशवैकालिक 2/9*

हे साधक ! तू जिन-जिन स्त्रियों को देखेगा, उन-उन के प्रति यदि तू काम-भाव ही करता रहेगा तो हवा के झोंके से डोलते हुए हड़ वनस्पति के पौधे की तरह अस्थिरात्मा हो जाएगा ।

170. चाह गई चिन्ता मिटी

कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 644]

— *दशवैकालिक - 2/5*

कामनाओं को जीतना ही वस्तुतः दु.खों को दूर करना है ।

171. राग-द्वेष के क्षय से लाभ

छिंदाहि दोसं विणएज्जरागं, एवं सुही होहिसि संपराए ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 644]

— *दशवैकालिक 2/5*

द्वेषभाव का छेदन करो और रागभाव को दूर हटाओ। संसार में सुखी हो जाओगे।

172. बार-बार सामायिक

एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 703]

— *विशेषावश्यकभाष्य. 2690*

आवश्यक निर्युक्ति 800/1

श्रावक का कर्तव्य है कि वह अधिक से अधिक सामायिक करें

173. समभावी भयमुक्त

सामाइयमाहु तस्स जं, जो अप्पाणं भएण दंसए।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 703]

— *सूत्रकृतांग 1/2/2/17*

जो अपनी आत्मा के लिए किसी भी प्रकार का भय नहीं देखता है, यही उसके लिए सामायिक कही गई है।

174. अनेकान्तदृष्टि

मिच्छत्तमय समूहं सम्मत्तं।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 707]

— *विशेषावश्यक भाष्य - 954*

अनेकान्तदृष्टि से युक्त होने पर मिथ्यात्व मतों का समूह भी सम्यक्त्व वन जाता है।

175. सच्ची सामायिक

जस्स सामाणिओ अप्पा, संजमे णियमे तवे।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 711]

— *अनुयोगद्वारसूत्र - 599/127*

जिसकी आत्मा संयम, नियम एवं तप में तल्लीन है; उसीकी सच्ची सामायिक होती है। ऐसा केवली भगवान् ने कहा है।

176. सामायिक

समभावो सामाइयं तण-कंचण-सत्तुमित्त वि सउत्ति।
णिरभिस्संगं चित्तं, अचियपवित्तिप्पहाणं च ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 711]
— ***पंचाशक सटीक - 11/5***

चाहे तिनका हो, चाहे सोना, चाहे शत्रु हो, चाहे मित्र, सर्वत्र अपने मनको राग-द्वेष की आसक्ति से रहित रखना तथा पाप-रहित उचित धार्मिक प्रवृत्ति करना 'सामायिक' है अर्थात् समभाव ही सामायिक है।

177. समभाव

समभावो सामाइयं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 711]
— ***सूत्रकृतांग चूर्णि 1/2/2***
एवं पंचाशक सटीक 11/5

समभाव ही सामायिक है।

178. समतायुक्त साधक

जो समो सव्वभूएसु, तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइयं होइ, इइ केवलिभासियं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 715]
— ***अनुयोगद्वार - 599/128***

जो त्रस और स्थावर सभी जीवों के प्रति समत्वयुक्त है, उसीकी सच्ची सामायिक होती है। ऐसा केवली भगवान् ने कहा है।

179. श्रमणतुल्य श्रावक

सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 716]
— ***आवश्यकनिर्युक्ति - 1/801***

सामायिक की साधना करता हुआ श्रावक भी श्रमण के तुल्य हो जाता है ।

180. मध्यस्थ-पहचान

जो ण विवट्टइ रागे, ण वि दोसे दोण्ह मज्झयारम्मि ।
सो होइ उ मज्झत्थो, सेसा सव्वे अमज्झत्था ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 716]
– ***आवश्यक निर्युक्ति - 1/803***

जो न राग करता है, न द्वेष करता है; वही वस्तुत: मध्यस्थ है । शेष सब अमध्यस्थ हैं ।

181. द्विविध नय

दिट्ठीइ दो णया खलु, ववहारो निच्छओ चेव ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 720]
– ***आवश्यक निर्युक्ति - 1/814***

जैनदर्शन में दो नय (विचार-दृष्टियाँ) हैं । निश्चय नय और व्यवहार नय ।

182. सामायिक

उवउत्तो जयमाणो, आया सामाइयं होई ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 737]
– ***आवश्यक निर्युक्ति भाष्य - 1/149***

यतनापूर्वक साधना में यत्नशील रहनेवाली आत्मा ही सामायिक है ।

183. आत्मा

आया खलु सामाइयं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 737]
– ***आवश्यक निर्युक्ति - 1/790***

आत्मा ही सामायिक है ।

184. सामायिक फल

सामाइएणं सावज्ज जोगं-विरइं जणयइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 762]
— *उत्तराध्ययन* - 29/10

सामायिक करने से सावद्ययोगों से निवृत्ति होती है ।

185. सामायिक का स्वामी कौन ?

सामायिकं च मोक्षाङ्गं, परं सर्वज्ञभाषितम् ।
वासी चन्दन कल्पाना-मुक्तमेतन्महात्मनाम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 762]
— *हारिभद्रीयाष्टक* 29/1

केवली भाषित समभाव रुप सामायिक (चारित्र) मोक्ष का प्रधान अंग है और यह सामायिक वासीचन्दनकल्प महात्माओं को होती है । वासीचन्दनकल्प अर्थात् कुल्हाड़ी के प्रति चन्दनवत् प्रकृति । जैसे-चंदन तो स्वयं को काटनेवाली कुल्हाड़ी को भी अपनी शीतलता और सुरभि ही देता है, वैसे ही सामायिक व्रती सन्त-महात्माओं को भी कोई द्वेषवश कितना ही परिताप, कष्ट, निंदादि से दु.खी करें तो वे उसे भी अपने सुहृद् भाव से सुखी ही बनाते हैं और यदि कोई उन्हें चन्दन का विलेपन करे अथवा भक्ति-स्तुति/ सत्कार-सम्मान करे तो वे खुश नहीं होते हैं अर्थात् वे प्रतिकूल के प्रति द्वेष और अनुकूल के प्रति राग नहीं करते हैं ।

186. जो तोकुं काँटा बूवै

अपकारपरेऽपि परे, कुर्वन्त्युपकारमेव महान्तः ।
सुरभि करोति वासीं, मलयजपि तक्षमाणमपि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 763]
— *हारिभद्रीयाष्टकसटीक* - 291

महापुरुषों का यह स्वभाव ही होता है कि वे अपने प्रति अपकार करनेवालों के प्रति भी उपकार ही करते हैं । यथा-चन्दन अपने को काटनेवाली कुल्हाड़ी को भी अपनी सुरभि से सुवासित ही करता है ।

187. स्वाध्याय-सुख

सज्झाए वा निउत्तेणं, सव्वदुक्ख विमोक्खणे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 773]

— *उत्तराध्ययन - 26/10*

स्वाध्याय करते रहने से समस्त दु:खों से मुक्ति मिलती है ।

188. श्रमण-दिनचर्या

पढमं पोरिसिं सज्झायं, बीयं झाणं झियायई ।
तइयाए भिक्खायरियं, पुणो चउत्थीइ सज्झायं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 773]

— *उत्तराध्ययन 29/12*

मुनि प्रथम प्रहर (तीन घण्टे) में स्वाध्याय करें, द्वितीय प्रहर में ध्यान करें, तृतीय प्रहर में भिक्षाचरी (गौचरी) के लिए जाएँ और चतुर्थ प्रहर में पुन: स्वाध्याय करें ।

189. श्रावक-कर्तव्य

जं साहूणं न दिण्णं, कहिंपि तं सावय न भुंजंति ।
पत्ते भोअणसमये, बारस्सलोअणं कुज्जा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 784-785]

— *धर्मसंग्रह 2/204*

जबतक श्रमण-श्रमणी को कुछ भी न दे देवें, तबतक श्रावक भोजन नहीं करें और प्रतिदिन भोजन के समय द्वार खुला रखें ।

190. श्रावक-दिनचर्या

मध्याह्नेऽर्चा च सत्पात्रदानपूर्वं तु भोजनम् ।
संवरण कृतिस्तद्विज्ञैः सार्द्धं शास्त्रार्थचिंतनम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 784]

— *धर्मसंग्रह 2/64/203*

श्रावक का यह दैनिक कर्तव्य है कि वह मध्याह्न पूजा करें । भोजन करने के पूर्व सुपात्र दान दें । तत्पश्चात् प्रत्याख्यान क्रिया करें और फिर विज्ञजनों के साथ बैठकर शास्त्रानुशीलन करें ।

191. अवश्य करणीय क्या ?

अगारि सामाइयंगाइं सड्ढी काएण फासए ।
पोसहं दुहओ पक्खं एगराइं न हावए ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 785]
— ***उत्तराध्ययन 5/23***

श्रद्धाशील गृहस्थ सामायिक के अंगों का काया से सम्यक् रूप से पालन करे । दोनों पक्ष में किए जानेवाले पौषध को एक दिनरात के लिए भी न छोड़ें ।

192. आरोग्यकुंजी

भोजनानन्तरं वामकटिस्थो घटिका द्वयम् ।
शयीत निद्रयाहीनं-यद्वा पदं शतं व्रजेत् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 785]
— ***धर्मसंग्रह - 2/206***

भोजन करने के पश्चात् बाँयी करवट से जागृत अवस्था में दो घड़ी (48 मिनट) शयन करे अथवा सौ कदम टहलें ।

193. शाश्वत-अशाश्वत

जीवासिय सासता सिय असासता गौतमा ।
दव्वट्ठताए सासता, भावट्ठयाए असासता ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 793]
— ***भगवती 7/2/36 [2]***

जीव शाश्वत भी है, अशाश्वत भी । द्रव्यदृष्टि (मूल स्वरूप) से शाश्वत है, तथा भावदृष्टि (मनुष्यादि पर्याय) से अशाश्वत ।

194. विवाद-कलह-वर्जन

विवायं कलहं चेव, सव्वहा परिवज्जए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 799]
— ***धर्मसंग्रह - 2/242***

विवाद और कलह का सर्वथा परित्याग करें ।

195. साधर्मिक-वात्सल्य महिमा

एगत्थसव्व धम्मो, साहम्मिअ वच्छलं तु एगत्थं ।
बुद्धि तुलाए तुलिआ, दो वि अतुल्लाइं भणिआइं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 799]
— *धर्मसंग्रह 2/241*

बुद्धि रूपी तराजू पर तोलो । एक पलड़े में सभी धर्मों (धर्म के अहिंसादि अंगों) को रखो और दूसरे में साधर्मिक-वात्सल्य को रखो । दोनों ही पलड़े बराबर नहीं हो सकते । साधर्मिक-वात्सल्य का पलड़ा ही भारी रहेगा ।

196. साधर्मिक सम्बन्ध पुण्य से

सर्वैः सर्वे मिथः सर्व सम्बन्धालब्धपूर्विणः
साधर्मिकादिसम्बन्ध-लब्धारस्तु मिताः क्वचित् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 799]
— *धर्मसंग्रह - 2*

इस संसार में सभी आत्माओंने सब आत्माओं के साथ माता-पिता, भाई-बहन, पति-पत्नी आदि के सभी सम्बन्ध पूर्व में पा लिए, किन्तु साधर्मिकादि सम्बन्ध तो कभी-कभार पुण्य से ही मिलता है ।

197. स्वधर्मी समागम दुर्लभ

समान धर्माणो हि प्रायेण दुष्प्रापाः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 799]
— *धर्मसंग्रह - 2*

समान धर्मवालों का मिलना प्रायः दुष्कर होता है ।

198. सोहि नरभव हारो

न कयं दीणुद्धरणं, न कयं साहम्मिआणवच्छलं ।
हिययम्मि वीयराओ, न धारिओ, हारिओ जम्मो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 799]
— *धर्मसंग्रह - 2*

जिसने दीनजनों का उद्धार नहीं किया, साधर्मियों के प्रति वात्सल्यभाव नहीं किया, हृदयमें वीतरागदेव को धारण नहीं किया, वह अपने मनुष्यजन्म को हार गया है।

199. हितावह शिक्षा

सारणा वारणा चैव, चोअणा पडिचोअणा ।
सावएणावि दायव्वा, सावयस्स हिआवहा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 799]
— *धर्मसंग्रह - 2/242*

सारणा, वारणा, चोयणा और पडिचोयणा - ये चार शिक्षाएँ श्रावक के लिए हितावह होने से उन्हें भी देना चाहिए।

200. साधु कौन ?

साधयति सम्यग्दर्शनादियोगैरपवर्ग इति साधुः ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 802]
— *दशवैकालिक टीका 1/5*

सम्यग्दर्शनादि द्वारा जो मोक्ष की साधना करता है, वह साधु है।

201. वैराग्य-प्रकार

वैराग्यं च स्मृतं दुःखमोहज्ञानान्वितं त्रिधा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 806]
— *द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका 26/21*

वैराग्य तीन प्रकार के हैं - दुःखगर्भित, मोहगर्भित और ज्ञानगर्भित।

202. बाह्याडम्बर

गुणेषु यत्नक्रियतां, किमाटोपैः प्रयोजनम् ?
विक्रीयन्ते न घण्टाभिर्गावः क्षीरविवर्जितः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 818]
— *धर्मबिन्दुसटीक 15*

गुण ग्रहण करने का यत्न करना चाहिए, सिर्फ आडम्बर से क्या लाभ है ? जैसे-गाय, बिना दूधके केवल गले में घण्टा बाँधने से नहीं बिकती, दूध के कारण बिकती है।

203. गुणों की पूजा

शुद्धाः प्रसिद्धिमायान्ति, लघवोऽपीह नेतरे ।
तमस्यपि विलोक्यन्ते, दन्तिदन्तान दन्तिनः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 818]
— ***धर्मबिन्दु सटीक 16***

शुद्ध वस्तु छोटी होने पर भी प्रसिद्ध हो जाती है, परन्तु अशुद्ध वस्तु बड़ी होने पर भी अप्रसिद्ध रह सकती है । जैसे-अंधेरे में भी हाथी के दांत चमकते हैं, किन्तु हाथी बड़ा होने पर भी नहीं दिखता ।

204. अपवित्र मन

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं, तीर्थस्नानैर्न शुध्यति ।
शतशोऽपि जलैर्धौत-सुराभाण्ड मिवाशुचि ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 819]
— ***धर्मरत्नप्रकरण*** - *1/10/175*

जैसे मदिरा-पात्र हजारों बार जल से धोने पर भी अशुद्ध ही रहता है वैसे ही हजारों बार तीर्थ-स्नान करने से भी यह दुष्ट अन्तर्मन अपवित्र ही रहता है ।

205. सिद्धसुख अनिर्वचनीय

जइणाम लोइ मिच्छो, नगरगुणे बहुविहे वियाणंतो ।
न चएइ परिकहेउं, उवमाए तहिं असंतीए ॥
इय सिद्धाणं सोक्खं, अणोवमं णत्थि तस्स ओवम्मं ।
किंचि विसेसेणेत्तो, ओवम्ममिणं सुणह वोच्छं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 841-844]
— ***औपपातिक*** - *16/17*

जिसप्रकार कोई म्लेच्छ (जंगली) नगर की अनेकविध विशेषताओं को देख लेने पर भी कोई उपमा न मिलने से उसका वर्णन करने में वह असमर्थ होता है । इसीप्रकार सिद्धात्माओं का सुख अनुपम होता है । उसकी तुलना नहीं हो सकती ।

206. अमर सुखधाम मुक्तात्मा

णवि अत्थि माणुसाणं तं सोक्खं णवि य सव्वदेवाणं ।
जं सिद्धाणं सोक्खं अव्वाबाहं उवगयाणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 844]
— ***औपपातिकसूत्र - 13***

संसार के सब मनुष्यों और सब देवताओं को भी वह सुख प्राप्त नहीं हैं जो सुख अव्याबाध स्थिति को प्राप्त हुए मुक्त आत्माओं को हैं ।

207. सिद्धात्म-स्वरुप

निच्छिन्नसव्वदुक्खा, जाइजरामरण बंधणविमुक्का ।
अव्वाबाहं सुक्खं, अणुहोंति सासयं सिद्धा ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 845]
— ***औपपातिक - 21***

सिद्धात्मा समस्त दुःखों को नष्ट किए होते हैं । जन्म-जरा और मृत्यु के बंधन से मुक्त होते हैं । अव्याबाध सुख का अनुभव करते हैं और शाश्वत सिद्ध होते हैं ।

208. स्याद्वाद-नमन

स्याद्वादाय नमस्तस्मै, यं विना सकलाः क्रियाः ।
लोकद्वितयभाविन्यो, नैव साङ्गत्यमियूति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 856]
— ***आगमीय सूक्तावली - 27/2***
एवं स्थानांगसूत्रसटीक 9 ठाणा

लोक को दूसरे रूपमें ढालनेवाली सम्पूर्ण क्रियाएँ जिसके बिना साङ्गत्यता-असंवादिता को प्राप्त नहीं होती, ऐसे उस स्याद्वाद को प्रणाम हो ।

209. मिथ्या-भ्रान्ति

जननी मे जनको मे, भ्राता मे सुतकलत्रवर्गो मे ।
मिथ्यैव बुद्धिरेषो, न दैहमपि वस्तुतः स्वीयम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 863]

— ***धर्मरत्नप्रकरण 3 अधि. 7 लक्ष***

मेरी माता, मेरे पिता, मेरा भैया, मेरा पुत्र, मेरी पत्नी, यह मिथ्यात्व युक्त बुद्धि है, परन्तु वस्तुत: यह शरीर भी अपना नहीं है ।

210. शिष्य प्रशिक्षण

ओवायकारी विणयं सुसिक्खे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 880]

— ***सूत्रकृतांग - 1/14/1***

आचार्य अथवा गुरु के सान्निध्य में अर्थात् उनकी आज्ञा में रहनेवाला शिष्य विनय का प्रशिक्षण लें ।

211. चतुर कौन ?

जे छेए विप्पमादं न कुज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 880]

— ***सूत्रकृतांग - 1/14/1***

चतुर वही है जो कभी प्रमाद नहीं करता ।

212. ब्रह्मचर्य में निवास

सुबंभचेरं वसेज्जा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 880]

— ***सूत्रकृतांग - 1/14/1***

ब्रह्मचारी श्रेष्ठ ब्रह्मचर्य में निवास करें ।

213. संयम वातानुकूलित

अभयकरो जीवाणं सीयघरो संजमो भवइ सीओ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 883]

— ***आचारांग निर्युक्ति - 206***

प्राणिमात्र को अभय करने के कारण संयम शीतगृह (वातानुकूलित-गृह) के समान अर्थात् शान्तिप्रद है ।

214. कौन जागते ? कौन सोते ?

सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 884]

— *आचारांग - 1/3/1/106*

अज्ञानी सदा सोए रहते हैं और ज्ञानी सदा जागते रहते हैं ।

215. समझने-योग्य !

लोगंसि जाण अहियाय दुक्खं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 884]

— *आचारांग - 1/3/1/106*

यह समझ लो कि इस संसार में दुःख ही अहित के लिए होता है ।

216. सर्वविद्

जस्सि मे सद्दाय रूवाय................भवंति ।
से आतवं णाणवं................बंभवं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 884-885]

— *आचारांग - 1/3/1/107*

जो पुरुष शब्द, रुप, गंध, रस और स्पर्शों को भली-भाँति जान लेता है और उनमें राग-द्वेष नहीं करता है, वह आत्मविद्, ज्ञानविद्, वेदविद्, धर्मविद् और ब्रह्मविद् होता है ।

217. सरलमना

धम्मविदुत्ति अंजु ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 885]

— *आचारांग - 1/3/1/107*

धर्म को समझनेवाला सरलहृदयी होता है ।

218. मुनि कौन ?

पण्णाणेहिं परिजाणति लोगं मुणीति वच्चे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 885]

— *आचारांग - 1/3/1/107*

जो अपनी प्रज्ञा से संसार के स्वरूप को ठीक तरह से जानता है, वही मुनि कहलाता है।

219. निर्ग्रन्थ साधक

सीतोसिणच्चागी से णिग्गंथे, अरति रति सहे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 885]

— *आचारांग - 1/3/1/107*

जो सर्दी-गर्मी का त्यागी है तथा अरति (विषाद) और रति (आह्लाद) को सहन करता है, वह निर्ग्रन्थ साधक है।

220. निर्ग्रन्थ कौन ?

फारूसियं णो वेदेति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 885]

— *आचारांग - 1/3/1/107*

निर्ग्रन्थ साधक शारीरिक कष्टों का अनुभव नहीं करता है।

221. आवर्तस्रोत

आवट्टसोए संगमभिजाणइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 885]

— *आचारांग - 1/3/1/107*

आत्मविद् मुनि आसक्ति को आवर्त स्रोत (जन्म-मरण) के रुप में अति निकटता से जान लेता है।

222. धर्मतत्त्व से अनभिज्ञ

जरा मच्चुव सोवणीते णरे सततं मूढे धम्मं नाभिजाणति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 885]

— *आचारांग - 1/3/1/108*

वृद्धावस्था और मृत्यु का वशवर्ती मनुष्य सदैव मूढ़ बना रहता है, वह धर्मतत्त्व को नहीं जानता।

223. दुःखमुक्त कौन ?

जागर वेरोवरए वीरे एवं दुक्खा पमोक्खसि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 885]

— *आचारांग - 1/3/1/107*

जागरुक और वैर से रहित वीरपुरुष दुःखों से मुक्त हो जाता है ।

224. आत्मगुप्त-आत्मज्ञ कौन ?

अप्पमत्तो कामेहिं उवरतो पावकम्मेहिं,
वीरे आतगुत्ते खेयण्णे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 886]

— *आचारांग - 1/3/1/109*

जो काम-भोगों के प्रति अप्रमत्त रहता है और पापकर्मों से पृथक् रहता है; वह पुरुष वीर, अपने आपको सुरक्षित रखनेवाला और आत्मज्ञ है ।

225. मृत्यु-बोध

माराभिसंकी मरणा पमुच्चति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 886]

— *आचारांग - 1/3/1/108*

जो मृत्यु से आशंकित रहता है, वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है ।

226. जन्म-मरण

मायी पमायी पुणरेतिगब्भं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 886]

— *आचारांग - 1/3/1/108*

दम्भी और प्रमादी व्यक्ति बार-बार गर्भ में आता है और जन्म-मरण करता रहता है ।

227. दुःख-मूल

आरंभजं दुक्खमिणं ति णच्चा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 886]

— ***आचारांग - 1/3/1/108***

यह सब दु:ख हिंसा में से उत्पन्न होता है।

228. तत्त्वदर्शी

अकम्मस्स ववहारो ण विज्जति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 886]

— ***आचारांग - 1/3/1/110***

जो कर्म में से अकर्म की स्थिति में पहुँच गया है, वह तत्त्वदर्शी लोक-व्यवहार की सीमा से परे हो गया है।

229. कर्मोपाधि

कम्मुणा उपाथी जायति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 886]

— ***आचारांग - 1/3/1/110***

कर्म से ही समग्र उपाधियाँ-विकृतियाँ पैदा होती हैं।

230. जागरुकता

पासिय आउरे पाणे अप्पमत्तो परिव्वए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 886]

— ***आचारांग - 1/3/1/108***

प्राणियों को शारीरिक और मानसिक दु:खों से दु:खी देखकर साधक सतत जागृत होकर विचरण करें।

231. सरलसंयमी

उवेहमाणो सद्द-रूवेसु अंजु ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 886]

— ***आचारांग - 1/3/1/108***

शब्द और रूपादि की उपेक्षा करनेवाला सरल-संयमी होता है।

232. मननपूर्वक देख !

मंता एयं मतिमं पास ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 886]
— *आचारांग - 1/3/1/108*

हे मतिमान् । तू मननपूर्वक इसे देख ।

233. कर्म-मूल

कम्ममूलं च जं क्षणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 887]
— *आचारांग - 1/3/1/111*

कर्म का मूल हिंसा है ।

234. सम्यग्दर्शी

सम्मत्तदंसी न करेति पावं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 887]
— *आचारांग - 1/3/2/112*

सम्यग्दर्शी साधक पापकर्म नहीं करता ।

235. गृद्ध-दृष्टि

कामेसु गिद्धा णिचयं करेंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 888]
— *आचारांग - 1/3/2/113*

काम-भोगों में आसक्त रहनेवाले मनुष्य कर्मों का बंधन करते हैं ।

236. मृत्यु से मुक्त

एस मरणा पमुच्चति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 888]
— *आचारांग - 1/3/2/116*

आत्मदर्शी मृत्यु से मुक्त हो जाता है ।

237. राग-पाश

उम्मुं च इह मच्चिएहिं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग-7 पृ. 888]

आचारांग - *1/3/2/113*

इस मरणशील संसार में मनुष्यों के साथ रागादि बन्धन है, उसे तोड़ डालो ।

238. कामगृद्ध पुरुष

संसिच्चमाणा पुणरेति गब्भं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 888]

— ***आचारांग*** *- 1/3/2/113*

आसक्तिरूपी कर्म की जड़ें बार-बार सींची जाने से कामगृद्ध पुरुष बार-बार गर्भ में आते हैं ।

239. आरम्भजीवी

आरम्भजीवी उभयाणुपस्सी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 888]

— ***आचारांग*** *- 1/3/2/113*

आरम्भजीवी अर्थात् महारम्भी-महापरिग्रही व्यक्ति नरकादि भय का दर्शन (अनुभव) करता रहता है ।

240. आस्रव-बंध

बहुं च खलु पावकम्मं पगडं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 888]

— ***आचारांग*** *- 1/3/2/116*

इस जीव ने अतीतकाल में विविध प्रकार के बहुत से पाप-कर्मों का बंध किया है ।

241. मुनि क्या न करे ?

से न छणे न छणावहे छणणं तं णाणुजाणति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 889]

— ***आचारांग*** *- 1/3/2/119*

वह अनन्यसेवी अहिंसक मुनि जीवों का स्वयं घात नहीं करे, न करवाए और करनेवालों का अनुमोदन भी नहीं करे ।

242. मोक्ष-मार्ग

अणण्णं चर माहणे ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 889]

– *आचारांग - 1/3/2/119*

हे अहिंसक ! तू अनन्य मोक्षमार्ग का आचरण कर ।

243. अनासक्ति

णिव्विद नंदिं ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 889]

– *आचारांग - 1/3/2/119*

हे साधक ! तू दुन्यवी सुख से उदासीन बन ।

244. पाप-क्षय

एत्थोवरए मेहावी सव्वं पावं कम्मं झोसेति ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 889]

– *आचारांग - 1/3/2/117*

सत्य में स्थित रहनेवाला मेधावी साधक समस्त पापकर्मों का शोषण (क्षय) कर डालता है ।

245. मन, छलनी

अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे,
से केयणं अरिहइ पुरइत्तए ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 889]

– *आचारांग - 1/3/2/118*

यह मानव अनेक चित्त है अर्थात् अनेकानेक कामनाओं के कारण मानव-मन बिखरा हुआ रहता है । मानो वह एकतरह से छलनी को जल से भरना चाहता है ।

246. विषय-विष

निस्सारं पासिय नाणी ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 889]
– *आचारांग - 1/3/2/119*

हे ज्ञानी ! तू विषयों को निस्सार समझकर विषयाभिलाषा मत कर ।

247. द्रष्टा साधक

अणोमदंसी णिसण्णे पावेहिं कम्मेहिं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 889]
– *आचारांग - 1/3/2/119*

उच्च दृष्टिवाला साधक कभी पापकर्मों का आदर नहीं करता ।

248. नारी में अनुराग नहीं

अरते पयासु ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 889]
– *आचारांग 1/3/2/119*

हे साधक पुरुष ! तू स्त्रियों में अनुरक्त मत बन ।

249. प्राणवध-वर्जन

णो पाणिणं पाणे समारंभेज्जासि ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 890]
– *आचारांग - 1/3/2/121*

प्राणियों के प्राणों का वध न करें ।

250. मनुष्यभव की सार्थकता

उम्मुग्ग लद्धुं इह माणवेहिं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 890]
– *आचारांग - 1/3/2/121*

इस मनुष्य जीवन में ही संसार-सागर से तिरने का अवसर मिलता है ।

251. कषाय-नाश

कोधादिमाणं हणियाय वीरे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 890]

— ***आचारांग - 1/3/2/120***

वीर पुरुष क्रोध और मान को नष्ट करें ।

252. धीरपुरुष

गंथं परिण्णाय इहेऽज्ज !

वीरे, सोयं परिण्णाय चरेज्ज दंते ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 890]

— ***आचारांग - 1/3/2/121***

इन्द्रियजयी धीरपुरुष ग्रंथियों (परिग्रह) और शोक को जानकर संयम में विचरण करें ।

253. मोक्षाभिलाषी

छिंदिज्ज सोतं लहुभूयगामी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 890]

— ***आचारांग - 1/3/2/120***

शीघ्र ही मोक्ष में जाने की इच्छा रखनेवाला वीर पुरुष विषय-वासनाओं को छिन्न-भिन्न कर डालें ।

254. अहिंसा

वीरे विरते वधातो ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 890]

— ***आचारांग - 1/3/2/120***

हे वीर ! हिंसा से बचते रहो ।

255. लोभः साक्षात् नरक

लोभस्स पासे णिरयं महंतं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 890]

— ***आचारांग - 1/3/2/120***

लोभ साक्षात् नरक है ।

256. समझने योग्य-स्थल

जं जाणेज्जा उच्चालयितं, तं जाणेज्जा दूरालयितं ।
जं जाणेज्जा दूरालयितं, तं जाणेज्जा उच्चालयितं ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 891]
– ***आचारांग*** *- 1/3/3/125*

जिसे तुम उच्च भूमिका पर स्थित समझते हो, उसका घर (स्थान) अति दूर समझो । जिसे अत्यन्त दूर समझते हो, उसे उच्च भूमिका पर स्थित समझो ।

257. मुनि-आचरण

समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसादए ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 891]
– ***आचारांग*** *- 1/3/3/123*

मुनि समता की दृष्टि से विचार करके आत्मा को प्रसन्न रखें ।

258. श्रेय-साक्षात्कार

सहितो धम्ममादाय सेयं समणुपस्सति ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 891]
– ***आचारांग*** *- 1/3/3/127*

सत्य से युक्त साधक धर्म को ग्रहण करके आत्म-हित का साक्षात्कार कर लेता है ।

259. साधक कैसे रहे ?

सव्वं हासं परिवच्चज्ज ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 891]
– ***आचारांग*** *- 1/3/3/124*

साधक सभी प्रकार के हास्यादि प्रमादों का त्याग कर विचरण करें ।

260. मुक्ति की चाभी

पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ,
एवं दुक्खा पमोक्खसि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 891]
— ***आचारांग* - 1/3/3/126**

हे पुरुष ! अपने आपका ही निग्रह करो । इसतरह स्वयं के निग्रह से ही तू दुःख से मुक्त हो जाएगा ।

261. विरक्त साधक

विरागरूवेहिं गच्छेज्जा महता खुड्डएहिं वा ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 891]
— ***आचारांग* - 1/3/3/123**

महान् हो या क्षुद्र हो, अच्छे हो या बुरे हो, साधक को सभी विषयों से विरक्त रहना चाहिए ।

262. स्वयं स्वमित्र

पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं,
किं बहिया मित्तमिच्छसि !

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 891]
— ***आचारांग* - 1/3/3/125**

हे मानव ! तू स्वयं ही अपना मित्र है । तू बाहर में क्यों किसी मित्र की खोज कर रहा है ?

263. जितेन्द्रिय

अलीण गुत्तो परिव्वए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 891]
— ***आचारांग* - 1/5/6/173**

साधक इन्द्रियों को समेटकर लीन बनें तथा मन-वचन और काया की तीन गुप्तियों से गुप्त होकर विचरण करें ।

264. एकज्ञ-सर्वज्ञ

जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणति ।
जे सव्वं जाणति, से एगं जाणति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 892]
— *आचारांग - 1/3/4/129*

जो एक को जानता है, वह सबको जानता है और जो सबको जानता है, वह एक को जानता है ।

265. सत्य-साधक

सहितो दुक्खमत्ताए पुट्ठो णो झंझाए ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 892]
— *आचारांग - 1/3/3/127*

सत्य की साधना करनेवाला साधक चारों ओर से दुःखों से घिरा रहने पर भी घबराता नहीं है, व्याकुल नहीं होता, विचलित नहीं होता ।

266. तत्त्वद्रष्टा

पासिमं दविए लोगालोगं पवंचातो मुच्चति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 892]
— *आचारांग - 1/3/3/127*

आत्मद्रष्टा पुरुष लोक-अलोक के समस्त प्रपञ्चों (विकल्पों) से मुक्त हो जाता है ।

267. मेधावी साधक

सड्ढी आणाए मेधावी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 893]
— *आचारांग - 1/3/4/129*

जिनाज्ञा में श्रद्धा रखनेवाला साधक मेधावी होता है ।

268. मान से माया

जे माणदंसी से मायादंसी ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 893]

— ***आचारांग - 1/3/4/130***

जो मानदर्शी होता है, वह मायादर्शी भी होता है।

269. प्रमत्त

सव्वतो पमत्तस्स भयं।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 893]

— ***आचारांग - 1/3/4/129***

प्रमादी को चारों ओर से भय रहता है।

270. एक में अनेक का विवेक

एगं विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ।
पुढो विगिंचमाणे एगं विगिंचइ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 893]

— ***आचारांग - 1/3/4/129***

एक का विवेक रखनेवाला अनेक का विवेक करता है और अनेक का विवेक करनेवाला एक का विवेक करता है।

271. अहिंसा, अमोघशस्त्र

अत्थि सत्थं परेण परं।
णत्थि असत्थं परेण परं॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 893]

— ***आचारांग - 1/3/4/129***

शस्त्र एक से एक बढ़कर हैं, किन्तु अहिंसारूपी अशस्त्र से बढ़कर कोई भी शस्त्र नहीं है।

272. क्रोध से उपजत मान

जे कोहदंसी से माणदंसी।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 893]

— ***आचारांग - 1/3/4/130***

जिसके हृदय में क्रोध है उसके हृदय में मान भी अवश्य है।

273. जीवन की अनाकांक्षा

परेण परं जंति णावकंखंति जीवितं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 893]

— *आचारांग - 1/3/4/129*

वीर साधक आगे-से-आगे बढ़ते जाते हैं, फिर उन्हें जीवन की आकांक्षा नहीं रहती हैं ।

274. वीरसाधक

दुक्खं लोगस्स जाणित्ता वंता लोगस्स
संजोगं जंति वीरा महाजाणं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 893]

— *आचारांग - 1/3/4/129*

वीरसाधक लोक के दुःख को जानकर तथा लोक के संयोग का परित्याग कर महायान (मोक्षपथ) को प्राप्त करते हैं ।

275. अप्रमत्त, निर्भय

सव्वतो अप्पमत्तस्स णत्थि भयं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 893]

— *आचारांग - 1/3/4/129*

अप्रमत्त को कहीं से भी भय नहीं रहता है ।

276. माया से लोभ

जे मायादंसी से लोभदंसी ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 894]

— *आचारांग - 1/3/4/130*

जो मायादर्शी होता है, वह लोभदर्शी होता है ।

277. अनुपाधि कौन ?

किमत्थि उवाधी पासगस्स ण विज्जति ? णत्थि ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 894]

— *आचारांग - 1/3/4/131*

वीतराग सत्यद्रष्टा को कोई उपाधि होती है या नहीं ? नहीं होती है ।

278. श्रमण-मर्यादा

नाइवेलं मुणी गच्छे ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 896]

— *उत्तराध्ययन - 2/8*

मुनि श्रमणमर्यादा या स्वाध्याय आदि की वेला का अतिक्रमण कर एक-स्थान से दूसरे स्थान न जावे ।

279. बधिर गुरु-शिष्य

अन्नं पुट्ठो अन्नं जो साहइ, सो गुरु न बहिरोव्व ।
न य सीसो जो अन्न सुणेइ, परिभासए अन्नं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 905]

— *विशेषावश्यक भाष्य - 1443*

बहरे के समान-शिष्य पूछे कुछ और बताए कुछ और वह गुरु, गुरु नहीं है और वह शिष्य भी शिष्य नहीं है, जो सुने कुछ और कहे कुछ और ।

280. हंसवत् सुशिष्य

अंबत्तणेण जीहाए, कूचिया होइ खीर मुदगम्मि ।
हंसो मुत्तूण जलं, आवियइ पयं तह सुसीसो ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 908]

— *बृहदावश्यक भाष्य - 347*

हंस जिसप्रकार अपनी जिह्वा की अम्लता-शक्ति के द्वारा जलमिश्रित दूध में से जल को छोड़कर दूध को ग्रहण कर लेता है, उसीप्रकार सुशिष्य दुर्गुणों को छोड़कर सद्गुणों को ग्रहण करता है ।

281. कुशिष्य मशकवत्

मसउव्व तुदं जच्चाइ एहिं निच्छुब्भए कुसीसो वि ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ.

— *बृहत्कल्पभाष्य - 350*

जो कुशिष्य गुरु को, जाति आदि की निंदा द्वारा मच्छर की तरह हर समय तंग करता रहता है, वह मच्छर की तरह ही भगा दिया जाता है।

282. शिष्य भी गुरु-शत्रु

सीसो वि वेरिओ सोउ, जो गुरुं न विबोहिए ।
पमायमइरागत्थं, सामायारीविराहयं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 911]

— *गच्छाचार पयन्ना - 1/18*

प्रमादादि राग-निवारणार्थ एवं समाचारी विराधना के लिए जो शिष्य गुरु को प्रतिबोध नहीं देता है, प्रेरणा नहीं देता है, वह शिष्य भी गुरु का शत्रु है।

283. गुरु-ऋण-मुक्ति दुष्कर

दुष्प्रतिकारौ माता-पितरौ, स्वामी गुरुश्च लोकेऽस्मिन् ।
तत्र गुरूरिहामुत्र च सुदुष्करतर प्रतीकारः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 911]

— *प्रशमरति - 71*

इस लोकमें माता-पिता, स्वामी और गुरु का प्रत्युपकार करना बड़ा कठिन हैं, उसमें भी गुरु के उपकार का बदला चुकाना तो इस लोक में और परलोक में भी अत्यन्त दुष्कर हैं।

284. सापेक्ष उत्सर्ग-अपवाद मार्ग

उस्सग्गेण निसिद्धा-इं जाइ दव्वाइं संथरे मुणिणो ।
कारण जाते-जाते सव्वाणि वि ताणि कप्पंति ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 947]

— *निशीथभाष्य - 5245*

बृह. भा. 3327

उत्सर्ग मार्ग में समर्थ मुनि को जिन बातों का निषेध किया गया है, विशिष्ट कारण होने पर अपवाद मार्ग में वे सब कर्तव्य रूप में विहित हैं।

285. महापुरुष-अवतरण

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 971]
— *भगवद्गीता - 4/7*

जब-जब धर्म का ह्रास होता है और अधर्म की वृद्धि होती है तब धर्म के उत्कर्ष के लिए इस पृथ्वी पर मैं अवतरित होता हूँ।

286. पदार्थ-लक्षण

सव्वं चिय परसमयं, उप्पज्जइ नासए य णिच्चं च ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 971]
— *विशेषावश्यक भाष्य - 544*

विश्व का प्रत्येक पदार्थ प्रतिक्षण उत्पन्न भी होता है, नष्ट भी होता है और साथ ही नित्य भी रहता है ।

287. उपयोग शून्य क्रिया

अणुवओगो दव्वं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 972]
— *अनुयोगद्वार - 599/14*

उपयोग शून्य सारी क्रियाएँ द्रव्य हैं, भाव नहीं ।

288. अज्ञान

जह दुव्वयणमवयणं कुच्छियसीलं असीलमसइए ।
भणइ तह नाणं पिहु मिच्छद्दिट्ठिस्स अणाणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 979]
— *विशेषावश्यकभाष्य - 520*

जैसे लोक में कुत्सित वचन 'अवचन' एवं कुत्सितशील, 'अशील' कहलाता है, वैसे ही मिथ्यादृष्टि का ज्ञान कुत्सित होने के कारण अज्ञान कहलाता है ।

289. किसका श्रुत, ज्ञान-अज्ञान ?

सम्मद्दिट्ठिस्स सुयं सुयणाणं ।
मिच्छादिट्ठिस्स सुयं सुयअण्णाणं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 992]
— ***नंदीसूत्र*** *- 45*

सम्यग्दृष्टि का श्रुत, श्रुतज्ञान है ।
मिथ्यादृष्टि का श्रुत, श्रुतअज्ञान है ।

290. ज्ञान से अज्ञान-नाश

सुयस्स आराहणयाए अन्नाणं खवेइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 992]
— ***उत्तराध्ययन*** *- 29/26*

ज्ञान की आराधना करने से आत्मा अज्ञान का नाश करती है ।

291. जिनवाणी

अत्थं भासइ अरहा, सुत्तं गंथंति गणहरा निउणं ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 994]
— ***आवश्यक निर्युक्ति*** *- 92*

तीर्थंकर की वाणी अर्थ (भाव) रूप होती है और निपुण गणधर उसे सूत्रबद्ध करते हैं ।

292. पाप-प्रणाशिनी माधुकरी

चरेन्माधुकरीं वृत्तिं, सर्वपापप्रणाशिनीम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1004]
— ***धर्मतत्त्वप्रकरणसटीक*** *- 178*

सभी पापों का नाश करनेवाली माधुकरी गौचरी की गवेषणा करे ।

293. निर्मलात्म-सरिता

आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा,
सत्यावगाह्यशीलतटा दयोर्मिः ।

तत्राभिषेकं कुरु पाण्डुपुत्र !
न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 1004]

– *हितोपदेश - 4/87*

इन्द्रियों का संयम ही जिसका पुण्यजल है, सत्य जिसका प्रवाह है, शील जिसका किनारा है और दया जिसमें लहरियों की माला है। हे युधिष्ठिर ! ऐसी आत्मारूपी नदी में स्नान करो । केवल पानी से स्नान करने पर अन्तरात्मा शुद्ध नहीं हो सकती ।

294. सुकाल-लक्षण

सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढ सुसमं जाणेज्जा ।
तं जहा-अकाले न वरिसइ, काले वरिसइ,
असाधूण पुज्जंति, साधू पुज्जंति गुरूहिं,
अणोसम्मं पडिवन्नो, मणोसुहता वतिसुहता हया ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 1015]

– *स्थानांग - 7/7/559*

इन सात बातों से समय की श्रेष्ठता (सुकाल) प्रकट होती है - (१) असमय पर न बरसना (२) समय पर बरसना (३) असाधुजनों का महत्त्व न बढ़ना (४) साधुजनों का महत्त्व बढ़ना (५) माता-पिता आदि गुरुजनों के प्रति सद्व्यवहार होना (६) मन की शुभता (७) और वचन की शुभता ।

295. तुष्टि-सुख

सतेणं लाभेणं तुस्सति परस्स लभं णो आसाएति.........
दोच्चा सुहसेज्जा ।

– श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 1021]

– *स्थानांग 4/4/3/325*

जो अपने प्राप्त हुए लाभ में संतुष्ट रहता है और दूसरों के लाभ की इच्छा नहीं रखता, वह सुखपूर्वक सोता है (यह सुख-शय्या का दूसरा पहलू है) ।

296. परिचयः तीक्ष्ण काँटा

सुहुमे सल्ले दुरुद्धरे, विदुमं ता पयहेज्ज संथवं ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 1025]

— *सूत्रकृतांग - 1/2/2/11*

मन में रहे हुए विकारों के सूक्ष्मशल्य को निकालना कभी-कभी बहुत कठिन हो जाता है, इसलिए विद्वान् पुरुष परिचय का त्याग करे ।

297. शूर-प्रकार

चत्तारि सूरा पन्नता । तं जहा - खंतिसूरे,
तवसूरे, दाणसूरे, जुद्धसूरे ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 1030]

— *स्थानांग - 4/4/3/317*

चार प्रकार के शूर कहे गए हैं-क्षमाशूर, तपशूर, दानशूर और युद्धशूर ।

298. शूर कौन ?

खंतिसूरा अरहंता, तवसूरा अणगारा,
दाणसूरे वेसमणे, जुद्धसूरे वासुदेवे ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 1030]

— *स्थानांग - 4/4/3/317*

क्षमाशूरों में सर्वोत्तम क्षमाशूर अरिहंत हैं, तप:शूर अणगार हैं, दानशूर कुबेर हैं और युद्धशूर वासुदेव हैं ।

299. स्वाध्यायः सर्वोत्कृष्ट तप

बारसविहंमि वि तवे, सब्भितर बाहिरे कुसलदिट्ठे ।
नवि अत्थि नवि य होही, सज्झाय समं तवोकम्मं ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 1144]

— *उपदेशमाला 337*

बारह प्रकार के तपों में स्वाध्याय के समान दूसरा कोई तप, न अतीत में हुआ है, न वर्तमान में है और न भविष्य में कभी होगा ।

300. स्वाध्यायरत

सज्झाए वट्टंतो, खणे-खणे जाइ वेरग्गं ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1145]

– ***उपदेशमाला 338***

स्वाध्याय में निरत व्यक्ति प्रतिक्षण वैराग्य को पाता है ।

301. स्वाध्याय से प्रत्यक्ष

उड्ढमहतिरियनरए, जोइसवेमाणिया य सिद्धि य ।
सव्वोलोगालोगो, सज्झाय विउस्स पच्चक्खो ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1145]

– ***उपदेशमाला - 339***

स्वाध्याय में स्थित आत्मा को ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्च्छलोक, नर्क, ज्योतिषी, वैमानिक, सिद्धि और सर्वलोकालोक प्रत्यक्ष भासित होता है।

302. स्वाध्याय से सर्वार्थ-सिद्धि

सज्झाएण पसत्थं झाणं, जाणइ अ सव्व परमत्थम् ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1145]

– ***उपदेशमाला 338***

स्वाध्याय से प्रशस्त ध्यान होता है और सर्व परमार्थ को जाना जाता है ।

303. ब्रह्मचर्य-दूषण

सुख-शय्या नवं वस्त्रं ताम्बूलं स्नान मज्जने ।
दन्त काष्ठं सुगन्धं च, ब्रह्मचर्यस्य दूषणम् ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1161]

– ***महाभारत-शान्तिपर्व***

सुखकारी शय्या, नए भड़कीले चमकीले वस्त्र, तांबूल, स्नान, मंजन-दांतुन और सुगन्धित पदार्थों का सेवन-ये ब्रह्मचर्य के दूषण हैं ।

304. मुनि, अक्रोधी

न हु मुणी कोवपरा भवंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1189]

— *उत्तराध्ययन - 12/31*

मुनि कभी किसी पर कोप नहीं किया करते ।

305. ऋषि प्रसन्नचित्त

महप्पसाया इसिणो भवंति ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1189]

— *उत्तराध्ययन - 12/31*

ऋषि-मुनि सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं ।

306. मुनि-तिरस्कार

गिरि नहेहिं खणह, अयं दंतेहिं खायह ।
जायतेयं पायेहिं हणह, जे भिक्खु अवमण्णह ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1189]

— *उत्तराध्ययन - 12/26*

मुनि का अपमान-तिरस्कार करना वैसा ही कष्टप्रद हैं, जैसा कि नखों से पर्वत को खोदना, दाँतों से लोहे को चबाना और पैरों से अग्नि को रौंदना ।

307. दान्तमुनि

छज्जीवकाए असमारंभंता मोसं अदत्तं च असेवमाणा ।
परिग्गहं इत्थिउ माणं मायं एयं परिन्नाय चरंति दंता ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1191]

— *उत्तराध्ययन 12/41*

मन और इन्द्रियों का दमन करनेवाले मुनि छः काय के जीवों की हिंसा नहीं करते, असत्य और चौर्य का सेवन नहीं करते । परिग्रह, स्त्री, मान और माया इन सब का भली-भाँति त्याग करके विचरण करते हैं ।

308. बाह्यशुद्धि निरर्थक

जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं,
न तं सुदिट्ठं कुसला वयन्ति ।

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 1191]
— *उत्तराध्ययन - 11/38*

जो बाह्य शुद्धि की खोज करते हैं, उन्हें 'कुशलजन' अर्थात् सम्यग्द्रष्टा नहीं कहते ।

309. कैसा यज्ञ ?

कहं चरे ? भिक्खु वयं जयामो ?
पावाइं कम्माइं पणोल्लयामो ?
अक्खहिणे संजयं ? जक्खपूइया ?
कहं सुजिट्ठं कुसला वयंति ?

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 1191]
— *उत्तराध्ययन - 12/40*

हे भिक्षो ! हम किस प्रकार का यज्ञ करें ? जिसके करने से पाप-कर्मों का नाश हो सके तथा हे यक्षपूजित संयत ! आप हमें बताएँ कि कुशलपुरुषोंने श्रेष्ठ यज्ञ का विधान किसप्रकार किया है ?

310. तप महान्, जाति नहीं

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो ।
न दीसइ जाई विसेसो कोइ ॥

— श्री अभिधान राजेन्द्र कोष [भाग 7 पृ. 1191]
— *उत्तराध्ययन - 12/37*

यह प्रत्यक्ष ही तप की महिमा दिख रही है । जाति की कोई महिमा नहीं है ।

311. श्रेष्ठ होम ऐसा हो !

तवो जोई जीवो जोइठाणं जोया सुया सरीरं कारीसग्गं ।
कम्मं एहा संजम जोगसंती, होमं हुणामी इसिणं पसत्थं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1192]

— *उत्तराध्ययन - 12/44*

तप ज्योति है अर्थात् अग्नि है। जीव अग्निस्थान है। मन-वचन और काया के योग सुवा अर्थात् आहूति देने की कड़छी है। शरीर करीषांग अर्थात् अग्नि प्रज्ज्वलित करने का साधन है। कर्म जलाए जानेवाला इंधन है। संयमयोग शान्तिपाठ है। ऐसे होम (यज्ञ) को ऋषियोंने श्रेष्ठ बताया है।

312. यज्ञोपकरण-रहस्य

के ते जोई के व ते जोइ ठाणा,
का ते सूया ? किं व ते कारिसंग।
एहा य ते कायरा संति भिक्खू ?
कयरेण होमेण हुणासि जोइं ? ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1192]

— *उत्तराध्ययन - 12/43*

हे भिक्षो ! तुम्हारी अग्नि कौन-सी है ? और तुम्हारा अग्निकुण्ड कौन-सा है ? तुम्हारे घी डालने की कड़छियाँ कौन-सी हैं ? तुम्हारे अग्नि को जलाने के कण्डे कौन-से हैं ? तुम्हारी समिधा और शान्तिपाठ कौन-सा है ? और किस हवन से तुम ज्योति को प्रसन्न करते हो ?

313. महाजय यज्ञ के अधिकारी

सुसंवुडा पंचहिं संवरेहिं, इह जीवियं अणवकंखमाणा।
वोसट्ठकाया सुचि चत्तदेहा, महाजयं जयई जन्नसिट्ठं ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1192]

— *उत्तराध्ययन - 12/42*

जो पाँच संवरों से सुसंवृत्त होते हैं, जो असंयम जीवन जीने की इच्छा नहीं करते और परिषहों को सहन करते हुए, जिन्होंने शरीर के प्रति ममत्त्वबुद्धि का त्याग कर दिया हैं। जो पवित्र हैं, विदेह हैं। वे ही महाजय रूप श्रेष्ठयज्ञ का अनुष्ठान करते हैं।

314. आध्यात्मिक तीर्थ-स्नान

धम्मेहरए बंभे संतितित्थे, अणाइले अत्तपसण्णलेसे ।
जहिं सिण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइ भूओ पजहामि दोसं ॥
एयं सिणाणं कुसलेहिं दिट्ठं, महसिणाणं इसिणं पसत्थं ।
जहिं सिण्हाया विमला विसुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाणं पत्त ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1192]

– ***उत्तराध्ययन - 12/46-47***

अकलुषित आत्मा का शुभ परिणामवाला धर्म मेरा नद (जलाशय) है । ब्रह्मचर्य मेरा शान्तितीर्थ है, जहाँ नहाकर मैं विमल, विशुद्ध और सुशीतल होकर द्वेष का त्याग करता हूँ ।

यह स्नान कुशल पुरुषों द्वारा दृष्ट है । यह महा स्नान है । अतः ऋषियों के लिए यही प्रशस्त है । इस धर्म जलाशय में स्नान किए हुए महर्षि विमल और विशुद्ध होकर उत्तम स्थान (मुक्ति) को प्राप्त हुए ।

315. सत्सङ्गः तीर्थ

साधूनां दर्शनं श्रेष्ठं, तीर्थभूता हि साधवः ।
तीर्थं पुनाति कालेन, सद्य साधु समागमः ॥

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1193]

– ***चाणक्यनीति दर्पण - 12/8***

एवं विक्रम चरित्र द्वितीय सर्ग - 176

साधुओं का दर्शन मंगलकारक है, क्योंकि साधु तीर्थ समान ही है अथवा तीर्थ से भी साधु समागम उत्तम है; क्योंकि तीर्थ तो देर से पवित्र करता है, किन्तु साधु महात्मा के दर्शन व समागम का फल तो तत्काल मिलता है ।

316. सुनो और ग्रहण करो

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम् ।

– **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1228]

– ***स्याद्वाद मंजरी सटीक एवं महाभारत***

सब धर्मों की सूक्ष्म व्याख्या सुनो, और सुनकर उसे ग्रहण करो।

317. एक हिंसा, अनेक हिंसा

एगं अन्नयरं तसं पाणं हणमाणे अणेगे जीवे हणइ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1230]

— *भगवती - 9/34/5 [2]*

एक त्रस जीव की हिंसा करता हुआ आत्मा तत्सम्बन्धी अनेक जीवों की हिंसा कर सकता है।

318. दुर्गतिगामी

देवोपहार व्याजेन, यज्ञव्याजेन येऽथवा।
घ्नन्ति जन्तून् गतघृणा, घोरां ते यान्ति दुर्गतिम्॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1230]

— *महाभारत*

देवों के भेंट चढ़ाने के बहाने अथवा यज्ञ के बहाने जो निर्दयी होकर जीवों को मारते हैं, वे घोर दुर्गति में जाते हैं।

319. हिंसा, धर्म नहीं !

अन्धे तमसि मज्जामः पशुभिर्ये यजामहे।
हिंसा नाम भवेद्धर्मो न भूतो न भविष्यति॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1230]

— *महाभारत एवं स्याद्वादमंजरी (उद्धृत) पृ. 94*

यदि हम पशुओं का यज्ञ करते हैं तो घोर अंधकार में पड़ते हैं, इसलिए हिंसा न कभी धर्म हुआ है, न हैं और न होगा।

320. किससे क्या ?

पूजया विपुलं राज्यमग्निकार्येण सम्पदः।
तपः पापविशुद्ध्यर्थं ज्ञानं-ध्यानं च मुक्तिदम्॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1230]

— *हारिभद्रीयाष्टक - 4/3*

पूजा से विपुल राज्य, यज्ञादि से सम्पदा, तप से पापों की शुद्धि और ज्ञान व ध्यान से मोक्ष मिलता है ।

321. उत्तम अग्निहोत्र यज्ञ

ज्ञानपालि परिक्षिप्ते, ब्रह्मचर्य दयाम्भसि ।
स्नात्वाऽति विमले तीर्थे, पापपंकापहारिणी ॥
ध्यानाग्नौ जीव कुण्डस्थे, दममारुतदीपिते ।
असत्कर्म समित् क्षेपैरग्निहोत्रं कुरूत्तमम् ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1230]

— ***स्याद्‌वादमंजरीसटीक एवं महाभारत***

ज्ञानरुपी चादर से ढँके हुए, ब्रह्मचर्य और दया जल से पूर्ण, पापरुपी कीचड़ को नष्ट करनेवाले, अत्यन्त निर्मल तीर्थ में स्नान करके, जीवरूपी कुण्ड में दमनरूपी पवन से उद्दीप्त, ध्यानाग्नि में अशुभ कर्मरूपी काष्ठ की आहूति देकर उत्तम अग्निहोत्र यज्ञ करो ।

322. कषायमेध यज्ञ

कषाय पशुभि र्दुष्टै धर्मकामार्थनाशकैः ।
शममन्त्रहुतैर्यज्ञं, विधेहि विहितं बुधैः ॥

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1230]

— ***महाभारत एवं स्याद्‌वादमंजरी सटीक***

धर्म, काम और अर्थ को नष्ट करनेवाले, दुष्ट कषायरूपी पशुओं का शम-मंत्रो से यज्ञ करो ।

323. ऋषि-हत्या से अनंत हिंसा

एगं इसिं हणमाणे अणंते जीवे हणइ ।

— **श्री अभिधान राजेन्द्र कोष** [भाग 7 पृ. 1231]

— ***भगवती 9/34/6 [2]***

एक अहिंसक ऋषि की हत्या करनेवाला एक प्रकार से अनंत जीवों की हिंसा करता है ।

प्रथम
परिशिष्ट
अकारादि अनुक्रमणिका

अकारादि अनुक्रमणिका

सूक्ति नम्बर	सूक्तिका अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
263.	अलीण गुत्तो परिव्वए ।	7	891
271.	अत्थि सत्थं परेण परं ।	7	893
279.	अन्नं पुट्ठो अन्नं जो साहइ ।	7	905
287.	अणुवओगो दव्वं ।	7	972
291.	अत्थं भासइ अरहा ।	7	994
319.	अन्धे तमसि मज्जामः ।	7	1230
	आ		
57.	आत्मवत् सर्वभूतानि ।	7	273
76.	आरूरुक्षुर्मुनिर्योगं ।	7	397
92.	आयतुले पयासु ।	7	428
98.	आयं न कुज्जा इह जीवियट्ठी ।	7	429
183.	आया खलु सामाइयं ।	7	737
221.	आवट्टसोए संगमभिजाणइ ।	7	885
227.	आरंभजं दुक्ख मिणं त्तिणच्चा ।	7	886
239.	आरम्भजीवी उभयाणुपस्सी ।	7	888
293.	आत्मा नदी संयमतोयपूर्णा ।	7	1004
	इ		
46.	इतो विद्धंसमाणस्स ।	7	206
148.	इह आणाकंखी पंडिते अणिहे ।	7	493
156.	इमं निरुद्धाउयं संपेहाए ।	7	494
	उ		
38.	उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ।	7	128
83.	उरग गिरि जलण सागर ।	7	410
139.	उवेहेणं बहिता य लोगं ।	7	492
182.	उवउत्तो जयमाणो ।	7	737
231.	उवेहमाणो सद्द-रुवेसु अंजु ।	7	886
237.	उम्मुं च इह मच्चिएहिं ।	7	888
250.	उम्मुग्ग लद्धुं इह माणवेहिं ।	7	890
284.	उस्सग्गेण निसिद्धा-ईं ।	7	947
301.	उड्ढमहतिरिय नरए ।	7	1145

सूक्ति नम्बर	सूक्तिका अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	ए		
94.	एतेसु बाले य पकुव्वमाणे ।	7	429
144.	एगमप्पाणं संपेहाए धुणे सरीरं ।	7	493
128.	एस धम्मे सुद्धे णिइए सासए ।	7	489
172.	एएण कारणेणं बहुसो सामाइयं कुज्जा ।	7	703
195.	एगत्थसव्व धम्मो ।	7	799
236.	एस मरणा पमुच्चति ।	7	888
244.	एत्थोवरए मेहावी सव्वं पावं ।	7	889
270.	एगं विगिंचमाणे पूढो विगिंचइ ।	7	893
317.	एगं अन्नयरं तसं पाणं ।	7	1230
323.	एगं इसिं हणमाणे अणंते जीवे हणइ ।	7	1231
	ओ		
210.	ओवायकारी विणयं सुमिक्खे ।	7	880
	अं		
280.	अंबत्तणेण जीहाए ।	7	908
	क		
143.	कसहि अप्पाणं जरेहि अप्पाणं ।	7	493
163.	कम्मुणा सफलं दट्ठू ।	7	495
167.	कहं न कुज्जा सामण्णं ।	7	643
229.	कम्मुणा उपाधि जायति ।	7	886
233.	कम्ममूलं च जं क्षणं ।	7	887
309.	कहं चरे ? भिक्खु वयं जयामो ?	7	1191
322.	कषायपशुभिर्दुष्टैः ।	7	1230
	का		
47.	काउं च णाणुतप्पइ ।	7	225
111.	कालेण कालं विहरेज्जरिट्ठे ।	7	461
170.	कामे कमाहि कमियं खु दुक्खं ।	7	644
235.	कामेसु गिद्धा णिचयं करेंति ।	7	888

सूक्ति नम्बर	सूक्तिका अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	कि		
277.	किमत्थि उवाधी पासगस्स ण विज्जति ?	7	894
	के		
312.	के ते जोई के व ते जोइ ठाणा ।	7	1192
	को		
251.	कोधादि माणं हणियाय वीरे ।	7	890
	कं		
16.	कंखे गुणे जाव सरीर भेए ।	7	62
	खि		
14.	खिप्पं न सक्केइ विवेगमेउं ।	7	61
	खं		
120.	खंतिक्खम मे संजय बंभयारी ।	7	461
298.	खंतिसूरा अरहंता ।	7	1030
	ग		
79.	गर्जज्ज्ञानगजोत्तुरङ्ग ।	7	398
	गि		
306.	गिरिनहेहिं खणह, अयं दंतेहिं खायह ।	7	1189
	गु		
202.	गुणेषु यत्न क्रियतां ।	7	818
	गं		
252.	गंथं परिण्णाय इहेऽज्ज ! वीरे ।	7	890
	घो		
3	घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं ।	7	59
	च		
18.	चउव्विहे संजमे - मणसंजमे ।	7	87
49.	चउव्विहे संवासे पण्णत्ते ।	7	238
51.	चउव्विहे सच्चे पण्णत्ते ।	7	271

सूक्ति नम्बर	सूक्तिका अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
62.	चतुष्कालं स्वाध्यायः कर्तव्यः ।	7	286
86.	चत्तारि समणो वासगा पन्नत्ता-तं जहा ।	7	414
87.	चत्तारि समणो वासगा पण्णत्ता-अम्मापित्ति ।	7	414
90.	चरे मुणी सव्वतो विप्पमुक्के ।	7	428
116.	चरेज्ज भिक्खू सुसमाहि इंदिए ।	7	461
117.	चरिज्ज धम्मं जिणदेसियं विदू ।	7	461
292.	चरेन्माधुकरीं वृत्ति ।	7	1004
297.	चत्तारि सूरा पन्ता-तं जहा खंति सूरे ।	7	1030
	चि		
204	चित्तमन्तगर्तं दुष्टं ।	7	819
	छ		
307.	छज्जीवकाए असमारंभंता ।	7	1191
	छि		
123.	छिन्ने सोए अममे अकिंचणे ।	7	461
	छं		
8	छंदं निरोहेण उवेइ मोक्खं ।	7	60
	छिं		
171.	छिंदाहि दोसं विणएज्जरागं ।	7	644
253.	छिंदिज्ज सोतं लहुभूयगामी ।	7	890
	ज		
22.	जयासव्वं परिच्चज्जगन्तव्वमवसस्सते ।	7	100
41.	जम्मण सरिसं ण विज्जए दुक्खं ।	7	163
44.	जहा तवस्सी धुणुते तवेणं ।	7	180
81.	जह मम ण पियं दुक्खं ।	7	410
99.	जहाहि वित्तं पसवो य सव्वे ।	7	430
129.	जस्स णत्थि इमा णाती ।	7	490
142.	जहा जुन्नाइं कट्ठाइं हव्वाबाहो ।	7	493
152.	जहा खलु झुसिरं कट्ठं ।	7	494

सूक्ति नम्बर	सूक्तिका अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
161.	जस्स णत्थि पुरे पच्छा ।	7	495
169.	जइ तं काहिसि भावं ।	7	644
175.	जस्ससामाणिओ अप्पा ।	7	711
205.	जइ णाम लोइ मिच्छो ।	7	841-844
209.	जननी मे जनको मे ।	7	863
216.	जस्सि मे सद्दाय रुवाय ।	7	884-885
222.	जरा मच्चुव सोवणीते णरे ।	7	885
288.	जह दुव्वयणमवयणं ।	7	979
	जा		
223.	जागर वेरोवरए वीरे ।	7	885
	जि		
17.	जिण्णे भोअण मत्तेओ ।	7	70
	जी		
26.	जीवियं चेव रूवं च ।	7	100
193.	जीवासिय सासता ।	7	793
	जे		
137.	जे आमवा ते परिस्सवा ।	7	491
150.	जे धुणाति समुस्सयं वसित्ता बंभचेरंसि ।	7	494
162.	जेण बंधं वहं घोरं परितावं च दारुणं ।	7	495
211.	जे छेए विप्पमादं न कुज्जा ।	7	880
264.	जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणति ।	7	892
268.	जे माणदंसी से मायादंसी ।	7	893
272.	जे कोहदंसी से माणदंसी ।	7	893
276.	जे मायादंसी से लोभदंसी ।	7	894
	जो		
40.	जो संथवं न करेइ स भिक्खू ।	7	146
45.	जो एति एक्कं न उ एक्कलेणं ।	7	181
178.	जो समो सव्वभूएसु ।	7	715
180.	जो ण विवट्टइ रागे ।	7	716

सूक्ति नम्बर	सूक्तिका अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	जं		
189.	जं साहूणं न दिण्णं ।	7	784-785
256.	जं जाणेज्जा उच्चालयितं ।	7	891
308.	जं मग्गहा बाहिरियं विसोहिं ।	7	1191
	ण		
140.	णरा मुतच्चा धम्मविदुत्ति अंजू ।	7	492
206.	णवि अत्थि माणुसाणं ।	7	844
	णि		
243.	णिव्विंद नंदिं ।	7	889
	णो		
249.	णो पाणिणं पाणे समारंभेज्जासि ।	7	890
	त		
7	तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्खं ।	7	60
23.	तवं चरे ।	7	100
311.	तवो जोई जीवो जोइठाणं ।	7	1192
	ति		
124.	तित्थपणामं काउं, कहेइ साहारणेण ।	7	472
	ते		
24.	तेणावि जं कयं कम्मं ।	7	100
	तो		
80.	तो समणो जइ सुमणो ।	7	410
82.	तो समणो जइ सुमणो भावेण य जइण ।	7	410
	तं		
132.	तं आइत्तु ण पिहे ।	7	490
	दा		
27.	दाराणि य सुया चेव, मित्ता य तह बंधवा ।	7	100

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	दि		
29.	दिव्वं च गइं गच्छंति चरित्ता धम्ममारियं ।	7	103
133.	दिट्ठेहिं णिव्वेयं गच्छेज्जा ।	7	490
181.	दिट्ठीइ दो णया खलु ।	7	720
	दु		
48.	दुक्खं लब्भइ नाणं ।	7	227
60.	दुर्जनस्य रसना सनातनीं ।	7	278
155.	दुक्खं च जाण अदुवाऽऽगमेस्सं ।	7	494
274.	दुक्खं लोगस्स जाणित्ता वंता ।	7	893
283.	दुष्प्रतिकारौ माता-पितरौ ।	7	911
	दू		
158.	दूरणुचरो मग्गो वीराणं अनियट्टगामीणं ।	7	494
	दे		
318.	देवोपहारव्याजेन ।	7	1230
	ध		
34.	धम्मं चर ।	7	104
166.	धर्मरागोऽधिकोऽस्यैवं ।	7	512
217.	धम्मविदुत्ति अंजु ।	7	885
314.	धम्मेहरए बंभे संति तित्थे ।	7	1192
	ध्या		
75.	ध्यानवृष्टे र्दयानद्याः ।	7	397
	न		
43.	नत्थि भयं मरण समं ।	7	163
59.	न सत्यमपि भाषेत, परपीड़ाकरं वचः ।	7	273
114.	न सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा ।	7	461
119.	न असब्भमाहु ।	7	461
198.	न कयं दीणुद्धरणं ।	7	799
304.	न हु मुणी कोवपरा भवंति ।	7	1189

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	ना		
31.	नाणा रुइं च छन्दं च ।	7	103
70.	नार्हतः परमो देवो ।	7	33
278.	नाइवेलं मुणी गच्छे ।	7	896
	नि		
125.	निस्सग्गुवदेसरुइ-आणारुइ ।	7	484
207.	निच्छिन्न सव्व दुक्खा ।	7	845
246.	निस्सारं पासिय नाणी ।	7	889
	नो		
134.	नो लोगस्सेसणं चरे ।	7	490
153.	नो पडिसंजलेज्जासि ।	7	494
	प		
12.	पयहिज्ज लोहं ।	7	61
28.	पडंति नरए घोरे जे नरा पावकारिणो ।	7	103
63.	पढणाई सज्झायं वेरग्गणिबंधणं ।	7	292
101.	पवड्ढती वेरमसंजतस्स ।	7	430
135.	पमत्ते बहिया पास ।	7	490
159.	पलिछिंदिय बहिरगं च ।	7	495
188.	पढमं पोरिसिं सज्झायं ।	7	773
218.	पण्णाणेहिं परिजाणति लोगं मुणीति वच्चे ।	7	885
273.	परेण परं जंति णावकखंति जीवितं ।	7	893
	पा		
97.	पाणातिपाता विरते ठितप्पा ।	7	429
106.	पावातो अप्पाण निवट्टएज्जा ।	7	431
230.	पासिय आउरे पाणे अप्पमत्तो परिव्वए ।	7	886
266.	पासिमं दविए लोगालोगं पवंचातो मुच्चति ।	7	892

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	पि		
96.	पियमप्पियं कस्सइ नो करेज्जा ।	7	429
113.	पियमप्पियं सव्वं तितिक्खएज्जा ।	7	461
	पु		
55.	पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि ।	7	273
260.	पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ ।	7	891
262.	पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं ।	7	891
	पू		
104.	पूढो य छंदा इह माणवाउ ।	7	430
154.	पूढो फासाइं च फासे ।	7	494
320.	पूजया विपुलं राज्यं ।	7	1230
	पं		
19.	पंचविहे संजमे पन्नते-तंजहा ।	7	88
	प्र		
69.	प्रश्नावशादेकस्मिन् वस्तु ।	7	315-316
164.	प्रशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिक्याभि ।	7	497
	फा		
220.	फारुसियं णो वेदेति ।	7	885
	ब		
64.	बहुभवे संचिययं पिहु ।	7	292
240.	बहुं च खलु पावकम्मं पगडं ।	7	888
	बा		
299.	बारसविहंमि वि तवे ।	7	1144
	भो		
192.	भोजनानन्तरं वामकटिस्थो घटिकाद्वयम् ।	7	785
	म		
190.	मध्याह्नेऽर्चा च सत्पात्र ।	7	784

सूक्ति नम्बर	सूक्तिका अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
281.	मसउव्व तुदं जच्चाइ एहिं ।	7	908
305.	महप्पसाया इसिणो भवंति ।	7	1189
	मा		
11.	मायं न सेवे ।	7	61
56.	मातृवत् परदारांश्च ।	7	273
225.	माराभिसंकी मरणा पमुच्चति ।	7	886
226.	मायी पमायी पुणरेतिगब्भं ।	7	886
	मि		
174.	मिच्छत्तमय समूहं सम्मत्तं ।	7	707
	मु		
9.	मुहुं मुहुं मोह गुणे जयंतं ।	7	61
30.	मुसाभासा निरत्थिया ।	7	103
107.	मुसं न बूया मुणि अत्तगामी ।	7	431
	मे		
122.	मेरुव्व वाएण अकंपमाणे ।	7	461
	मं		
232.	मंता एयं मतिमं पास ।	7	886
	य		
74.	यदि सत्सङ्गनिरतो ।	7	337
285.	यदा यदा हि धर्मस्य ।	7	971
	र		
13.	रक्खेज्ज कोहं ।	7	61
121.	रयाइं खेवेज्ज पुरा कडाइं ।	7	461
	ला		
5.	लाभंतरे जीविय विहइत्ता ॥	7	59
	ले		
100.	लेसं समाहट्टु परिवएज्जा ।	7	430

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	लो		
72.	लोकापवाद भीरुत्वं ।	7	337
157.	लोयं च पास विफंदमाणं ।	7	494
215.	लोगंसि जाण अहियाय दुक्खं ।	7	884
255.	लोभस्स पासे ,णिरयं महंतं ।	7	890
	व		
54.	वरं कूपशताद्वापी ।	7	273
	वि		
4.	वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते ।	7	59
10.	विणएज्जमाणं ।	7	61
88.	विद्या विनयसम्पन्ने ।	7	416
146.	विचिन्त्यमेतद् भवताऽहमेको ।	7	493
149.	विगिंच कोहं अविकंपमाणे ।	7	493
151.	विगिंच मंस सोणितं ।	7	494
194.	विवायं कलहं चेव ।	7	799
261.	विरागरुवेहिं गच्छेज्जा ।	7	891
	वी		
254.	वीरे विरते वधातो ।	7	890
	वे		
108.	वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ।	7	431
	वै		
201.	वैराग्यं च स्मृतं दुःख ।	7	806
	वं		
168.	वंतं इच्छसि आवेउं ।	7	644
	स		
1.	सकम्मुणा कच्चइ पावकारी ।	7	57
37.	सव्वसंग विणिम्मुक्के ।	7	105
52.	सदा सच्चेण संपण्णे ।	7	272

सूक्ति नम्बर	सूक्तिका अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
53.	सच्चंसि धितिं कुव्वहा ।	7	273-889
58.	सच्चस्स आणाए से उवट्ठिए ।	7	273
66.	सज्झाएणं नानावरणिज्जं कम्मं खवेइ ।	7	292
67.	सज्झाए पंचविहे पन्नते-तं जहा ।	7	280-292
71.	सङ्ग सर्वात्मना त्याज्यः ।	7	337
73.	सर्वत्र निंदासंत्यागो ।	7	337-818
84.	सयणे च जणे य समो ।	7	410
89.	सव्विंदियऽनिव्वुडे पयासु ।	7	428
93.	सव्वं जगं तू समयाणुपेही ।	7	429
118.	सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी ।	7	461
127.	सम्मं च मोक्ख बीयं ।	7	489
136.	समेमाणा पलेमाणा पुणो पुणो ।	7	490
145.	सदैकोऽहं नं मे कश्चित् ।	7	493
176.	समभावो सामाइयं तणकंचण ।	7	711
177.	समभावो सामाइयं ।	7	711
187.	सज्झाए वा निउत्तेणं ।	7	773
196.	सर्वैः सर्वे मिथः सर्वे ।	7	799
197.	समानधर्माणो हि प्रायेण दुष्प्रापाः ।	7	799
234.	सम्मत्तदंसी न करेति पावं ।	7	887
257.	समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसादए ।	7	891
258.	सहितो धम्ममादाय सेयं समणुपस्सति ।	7	891
259.	सव्वं हासं परिवच्चवज्ज ।	7	891
265.	सहितो दुक्खमत्ताए पुट्ठो णो झंझाए ।	7	892
267.	सड्ढी आणाए मेधावी ।	7	893
269.	सव्वतो पमत्तस्स भयं ।	7	893
275.	सव्वतो अप्पमत्तस्स णत्थि भयं ।	7	893
286.	सव्वं चिय परसमयं ।	7	971
289.	सम्मद्दिट्ठिस्स सुयं सुयणाणं ।	7	992
294.	सत्तहिं ठाणेहिं ओगाढ सुसमं जाणेज्जा ।	7	1015
295.	सतेणं लाभेणं तुस्सति ।	7	1021

सूक्ति नम्बर	सूक्तिका अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
300.	सज्झाए वट्टंतो खणे-खणे जाइ वेरग्गं ।	7	1145
302.	सज्झाएण पसत्थं झाणं ।	7	1145
310.	सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो ।	7	1191
	सा		
173.	सामाइयमाहु तस्स जं ।	7	703
179.	सामाइयम्मि उ कए ।	7	716
184.	सामाइएणं सावज्ज जोगं ।	7	762
185.	सामायिकं च मोक्षाङ्गं ।	7	762
199.	सारणा वारणा चैव ।	7	799
200.	साधयति सम्यग्दर्शनादि ।	7	802
315.	साधूनां दर्शनं श्रेष्ठं ।	7	1193
	सी		
105.	सीहं जहा खुद्दमिगा चरंता ।	7	431
112.	सीहो व सद्देण न संतसेज्जा ।	7	461
219.	सीतोसिणच्चागी से णिग्गंथे ।	7	885
282.	सीसो वि वेरिओ सो उ ।	7	911
	सु		
6.	सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी ।	7	59
33.	सुपरिच्चाई दमं चरे ।	7	104
61.	सुष्ठु आ मर्यादया अधीयते इति स्वाध्यायः ।	7	280
165.	सुस्सूस धम्मराओ ।	7	512
212.	सुबंभचेरं वसेज्जा ।	7	880
214.	सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरंति ।	7	884
290.	सुयस्स आराहणयाए अन्नाणं खवेइ ।	7	992
296.	सुहुमे सल्ले दुरुद्धरे ।	7	1025
303.	सुख-शय्या नवं वस्त्रं ।	7	1161
313.	सुसंवुडा पंचहिं संवरेहिं ।	7	1192
	सू		
35.	सूरा दढपरक्कमा ।	7	105

सूक्ति नम्बर	सूक्ति का अंश	अभिधान राजेन्द्र कोष भाग	पृष्ठ
	से		
160.	से हु पन्नाणमंते बुद्धे आरंभोवरए।	7	495
241.	से न छणे न छणावहे छण्णं।	7	889
	सं		
2.	संसारमावन्न परस्स अट्ठा।	7	58
20.	संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ।	7	89
39.	संतोष परमं सौख्यम्।	7	146
50.	संवेगेणं अणुत्तरं धम्मसद्धं जणयइ।	7	242
147.	संसार एवायमनर्थसार।	7	493
238.	संसिच्चमाणा पुणरेति गब्भं।	7	888
	स्		
208.	स्याद्वादाय नमस्तस्मै।	7	856
65.	स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः।	7	292
68.	स्वाध्याय समं तपो नास्ति।	7	292
	श		
77.	शमसूक्तसुधासिक्तं।	7	398
	शु		
203.	शुद्धाः प्रसिद्धिमायान्ति।	7	818
	श्रू		
316.	श्रूयतां धर्मसर्वस्वं।	7	1228
	हिं		
95.	हिंसण्णितं वा ण कहं करेज्जा।	7	429
	ज्ञा		
78.	ज्ञानध्यानतपःशील।	7	398
321.	ज्ञानपालिपरिक्षिप्ते।	7	1230

द्वितीय
परिशिष्ट
विषयानुक्रमणिका

विषयानुक्रमणिका

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
29	123	आत्मार्थी साधक कैसा ?
30	148	आज्ञाकांक्षी
31	156	आयु सीमित
32	183	आत्मा
33	192	आरोग्य-कुंजी
34	221	आवर्त स्रोत
35	224	आत्मगुप्त-आत्मज्ञ कौन ?
36	239	आरम्भजीवी
37	240	आस्रव-बंध
38	314	आध्यात्मिक तीर्थ-स्नान
39	98	आयवृद्धि से दूर
		इ
40	8	इच्छा-निरोध
41	116	इन्द्रिय-निग्रह
		उ
42	157	उद्बोधन
43	321	उत्तम अग्निहोत्र यज्ञ
44	287	उपयोग शून्य क्रिया
		ऋ
45	305	ऋषि प्रसन्नचित्त
46	323	ऋषि-हत्या से अनंत हिंसा
		ए
47	45	एक म्यानः दो तलवार
48	114	एक में मन
49	264	एकज्ञ-सर्वज्ञ
50	317	एक-हिंसा, अनेक हिंसा
51	270	एक में अनेक का विवेक
		क
52	2	कर्म-भोक्ता अकेला
53	142	कम कैसे जलाएँ ?

क्रमाङ्क	सूक्ति क्रमांक		सूक्ति शीर्षक
95	85		तप-निर्जरा
96	88		तत्त्वज्ञानी, समदर्शी
97	143		तन-मन-कल्प
98	228		तत्त्वदर्शी
99	266		तत्त्वद्रष्टा
100	310		तप महान्, जाति नहीं
		तु	
101	295		तुष्टि-सुख
		द	
102	118		दयाभाव
		दा	
103	307		दान्त मुनि
		दु	
104	318		दुर्गतिगामी
		दुः	
105	223		दुःख-मुक्त कौन ?
106	227		दुःख-मूल
		दे	
107	5		देह-पुष्टि
		दं	
108	11		दंभ-वर्जन
		द्र	
109	57		द्रष्टा कौन ?
110	247		द्रष्टा साधक
111	7		द्रुतमोक्षगामी
		द्वि	
112	181		द्विविध नय
		ध	
113	138		धर्माचरण
114	29		धर्माचारी

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
115	34	धर्माचरण
116	140	धर्मविद् सरलमना
117	166	धर्मानुराग श्रेष्ठतम
118	222	धर्मतत्त्व से अनभिज्ञ
	धी	
119	252	धीर पुरुष
	ना	
120	248	नारी में अनुराग नहीं !
	नि	
121	47	निकृष्ट निर्दय
122	219	निर्ग्रन्थ साधक
123	293	निर्मलात्म-सरिता
124	220	निर्ग्रन्थ कौन ?
	नी	
125	17	नीति-सूत्र
	प	
126	40	परिचय-वर्जन
127	56	परनारी माता है, परधन मिट्टी
128	59	परपीड़क सत्य न बोले
129	122	परिषह सहिष्णु
130	286	पदार्थ-लक्षण
131	296	परिचय: तीक्ष्ण काँटा
	पा	
132	1	पापात्मा
133	28	पापाचारी
134	106	पापनिवृत्त आत्मा
135	108	पापकर्म कैसे ?
136	109	पापनिदान
137	244	पापक्षय
138	292	पाप-प्रणाशिनी माधुकरी
139	105	पाप से दूर

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
		पं
140	67	पंचविध-स्वाध्याय
141	19	पंचविध-चारित्र
		प्र
142	6	प्रबुद्धसाधक
143	135	प्रमादी
144	160	प्रज्ञावान् कौन ?
145	269	प्रमत्त
		प्रा
146	249	प्राणवध-वर्जन
		प्रि
147	96	प्रियाप्रिय निरपेक्ष
148	113	प्रिय-अप्रिय
		ब
149	279	बधिर गुरु-शिष्य
		बा
150	172	बार-बार सामायिक
151	202	बाह्याडम्बर
152	308	बाह्यशुद्धि निरर्थक
		ब्र
153	212	ब्रह्मचर्य में निवास
154	303	ब्रह्मचर्य-दूषण
		भा
155	3	भारण्डवत् सदा सजग
156	99	भाव समाधि से दूर कौन ?
157	137	भाव-प्रधानता
158	155	भावी दुःख
		भो
159	144	भोगलिप्त काया
160	162	भोगासक्ति-परिणाम

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
		मो
185	9	मोह
186	127	मोक्षबीज
187	242	मोक्ष-मार्ग
188	253	मोक्षाभिलाषी
		य
189	130	यत्नशील धीर !
190	132	यथातथ्य धर्म
191	312	यज्ञोपकरण-रहस्य
		यो
192	76	योगारुढ़ मुनि
		रा
193	111	राष्ट्रधर्म
194	171	राग-द्वेष के क्षय से लाभ
195	237	राग-पाश
		रु
196	31	रुचि-स्वच्छन्दता-वर्जन
197	110	रुचि-भिन्नता
		लो
198	12	लोभ-वर्जन
199	124	लोकभाषा
200	129	लोकैषणा
201	134	लोकैषणा-त्याग
202	255	लोभः साक्षात् नरक
		वि
203	14	विवेक
204	26	विद्युत्वत् चंचल जीवन
205	52	विश्व-बंधुत्व
206	75	विकारोन्मूलन
207	133	विरक्ति
208	136	विषय-भोग

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
209	139	विज्ञ कौन ?
210	168	विषय-चाट
211	194	विवाद-कलह-वर्जन
212	246	विषय-विष
213	261	विरक्त साधक
	वी	
214	158	वीरमार्ग दुर्गम
215	274	वीर साधक
	वै	
216	50	वैराग्य से धर्मश्रद्धा
217	201	वैराग्य-प्रकार
218	101	वैरवर्धन
	श	
219	77	शम-सुधा-सिंचित
	शा	
220	78	शान्तात्मा
221	128	शाश्वतधर्मः अहिंसा
222	193	शाश्वत-अशाश्वत
	शि	
223	210	शिष्य प्रशिक्षण
224	282	शिष्य भी गुरु-शत्रु
	शू	
225	35	शूर, पराक्रमी
226	297	शूर-प्रकार
227	298	शूर कौन ?
	शै	
228	169	शैवालवत् चंचल
	श्र	
229	80	श्रमणः सुमन
230	82	श्रमण कौन ?

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
231	83	श्रमण-व्यक्तित्व
232	84	श्रमण
233	188	श्रमण-दिनचर्या
234	86	श्रमणोपासक-प्रकार
235	87	श्रमणोपासक-श्रेणी
236	120	श्रमण कैसा हो ?
237	179	श्रमण तुल्य श्रावक
238	278	श्रमण-मर्यादा
	श्रा	
239	189	श्रावक-कर्तव्य
240	190	श्रावक-दिनचर्या
	श्रे	
241	33	श्रेष्ठ त्यागी
242	70	श्रेष्ठ में श्रेष्ठतम
243	258	श्रेय साक्षात्कार
244	311	श्रेष्ठ होम ऐसा हो !
	स	
245	38	सत्-लक्षण
246	49	सहवास-प्रकार
247	51	सत्य-प्रकार
248	53	सत्य में स्थिर
249	54	सत्य सर्वश्रेष्ठ
250	55	सचाई को परख !
251	58	सत्यवादी मृत्यु विजेता
252	60	सज्जन-दुर्जन-रसना
253	63	सविधि स्वाध्याय
254	69	सप्तभंगी-स्वरुप
255	71	सत्संग, महौषधि
256	72	सदाचार
257	73	सदाचाराधीन सर्वगुण
258	74	सत्संग-महत्त्व
259	79	सम्पदा की जयपताका कहाँ ?

क्रमाङ्क	सूक्ति नम्बर	सूक्ति शीर्षक
260	81	सच्चा श्रमण
261	93	समदर्शी
262	103	समाधि प्राप्त भिक्षु
263	125	सम्यग्दर्शन-प्राप्ति
264	126	सम्यक्त्व से अपूर्वलाभ
265	164	सम्यक्त्व-लक्षण
266	165	सम्यग्दृष्टि-लक्षण
267	173	समभावी भयमुक्त
268	175	सच्ची सामायिक
269	177	समभाव
270	178	समता युक्त साधक
271	215	समझने योग्य !
272	216	सर्वविद्
273	217	सरलमना
274	231	सरल संयमी
275	234	सम्यग्दर्शी
276	256	समझने योग्य स्थल
277	265	सत्य साधक
278	315	सत्सङ्गः तीर्थ
		सा
279	176	सामायिक
280	182	सामायिक
281	184	सामायिक-फल
282	185	सामायिक का स्वामी कौन ?
283	195	साधर्मिक-वात्सल्य महिमा
284	196	साधार्मिक सम्बन्ध पुण्य से
285	200	साधु कौन ?
286	259	साधक कैसे रहें ?
287	284	सापेक्ष उत्सर्ग-अपवाद मार्ग
		सि
288	37	सिद्धात्मा
289	205	सिद्ध-सुख अनिर्वचनीय
290	207	सिद्धात्म-स्वरूप

तृतीय
परिशिष्ट
अभिधान राजेन्द्रः
पृष्ठ संख्या
अनुक्रमणिका
भाग-७

अभिधान राजेन्द्रः पृष्ठ संख्या अनुक्रमणिका

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
1	57	29	103
2	58	30	103
3	59	31	103
4	59	32	104
5	59	33	104
6	59	34	104
7	60	35	105
8	60	36	105
9	61	37	105
10	61	38	128
11	61	39	146
12	61	40	146
13	61	41	163
14	61	42	163
15	61	43	163
16	62	44	180
17	70	45	181
18	87	46	206
19	88	47	225
20	89	48	227
21	100	49	238
22	100	50	242
23	100	51	271
24	100	52	272
25	100	53	273-889
26	100	54	273
27	100	55	273
28	103	56	273

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
57	273	87	414
58	273	88	416
59	273	89	428
60	278	90	428
61	280	91	428
62	286	92	428
63	292	93	429
64	292	94	429
65	292	95	429
66	292	96	429
67	292-280	97	429
68	292	98	429
69	315-316	99	430
70	333	100	430
71	337	101	430
72	337	102	430
73	337-818	103	430
74	337	104	430
75	397	105	431
76	397	106	431
77	398	107	431
78	398	108	431
79	398	109	460
80	410	110	461
81	410	111	461
82	410	112	461
83	410	113	461
84	410	114	461
85	412	115	461
86	414	116	461

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
117	461	147	493
118	461	148	493
119	461	149	493
120	461	150	494
121	461	151	494
122	461	152	494
123	461	153	494
124	472	154	494
125	484	155	494
126	487	156	494
127	489	157	494
128	489	158	494
129	490	159	495
130	490	160	495
131	490	161	495
132	490	162	495
133	490	163	495
134	490	164	497
135	490	165	512
136	490	166	512
137	491	167	643
138	491	168	644
139	492	169	644
140	492	170	644
141	492	171	644
142	493	172	703
143	493	173	703
144	493	174	707
145	493	175	711
146	493	176	711

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
177	711	207	845
178	715	208	856
179	716	209	863
180	716	210	880
181	720	211	880
182	737	212	880
183	737	213	883
184	762	214	884
185	762	215	884
186	763	216	884-885
187	773	217	885
188	773	218	885
189	784-785	219	885
190	784	220	885
191	785	221	885
192	785	222	885
193	793	223	885
194	799	224	886
195	799	225	886
196	799	226	886
197	799	227	886
198	799	228	886
199	799	229	886
200	802	230	886
201	806	231	886
202	818	232	886
203	818	233	887
204	819	234	887
205	841-844	235	888
206	844	236	888

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
237	888	271	893
238	888	272	893
239	888	273	893
240	888	274	893
241	889	275	893
242	889	276	894
243	889	277	894
244	889	278	896
245	889	279	905
246	889	280	908
247	889	281	908
248	889	282	911
249	890	283	911
250	890	284	947
251	890	285	971
252	890	286	971
253	890	287	972
254	890	288	979
255	890	289	992
256	891	290	992
257	891	291	994
258	891	292	1004
259	891	293	1004
260	891	294	1015
261	891	295	1021
262	891	296	1025
263	891	297	1030
264	892	298	1030
265	892	299	1144
266	892	300	1145
267	893	301	1145
268	893	302	1145
269	893	303	1161
270	893	304	1189

सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या	सूक्ति क्रम	पृष्ठ संख्या
305	1189	315	1193
306	1189	316	1228
307	1191	317	1230
308	1191	318	1230
309	1191	319	1230
310	1191	320	1230
311	1192	321	1230
312	1192	322	1230
313	1192	323	1231
314	1192		

चतुर्थ
परिशिष्ट
जैन एवं जैनेतर ग्रन्थः
अध्ययन/गाथा/श्लोकादि
अनुक्रमणिका

अनुयोगद्वार सूत्र

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
1	287	14
2	175	599/127
3	178	599/128
4	81	599/129
5	83	599/131
6	80	599/132
7	82	599/132
8	84	599/132

आचारांग सूत्र सटीक

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
9	214	1/3/1/106
10	215	1//3/1/106
11	216	1/3/1/107
12	217	1/3/1/107
13	218	1/3/1/107
14	219	1/3/1/107
15	220	1/3/1/107
16	221	1/3/1/107
17	223	1/3/1/107
18	222	1/3/1/108
19	225	1/3/1/108
20	226	1/3/1/108
21	227	1/3/1/108
22	230	1/3/1/108
23	231	1/3/1/108
24	232	1/3/1/108
25	224	1/3/1/109
26	228	1/3/1/110
27	229	1/3/1/110
28	233	1/3/1/111
29	234	1/3/2/112
30	235	1/3/2/113
31	237	1/3/2/113
32	238	1/3/2/113
33	239	1/3/2/113
34	236	1/3/2/116
35	240	1/3/2/116
36	53	1/3/2/117
37	244	1/3/2/117
38	245	1/3/2/118
39	241	1/3/2/119

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
40	242	1/3/2/119
41	243	1/3/2/119
42	246	1/3/2/119
43	247	1/3/2/119
44	248	1/3/2/119
45	251	1/3/2/120
46	253	1/3/2/120/8
47	254	1/3/2/120/8
48	255	1/3/2/120/8
49	249	1/3/2/121/9
50	250	1/3/2/121/9
51	252	1/3/2/121/9
52	257	1/3/3/123
53	261	1/3/3/123
54	259	1/3/3/124
55	256	1/3/3/125
56	262	1/3/3/125
57	260	1/3/3/126
58	55	1/3/3/127
59	58	1/3/3/127
60	258	1/3/3/127
61	265	1/3/3/127
62	266	1/3/3/127
63	264	1/3/4/129
64	267	1/3/4/129
65	269	1/3/4/129
66	270	1/3/4/129
67	271	1/3/4/129
68	273	1/3/4/129
69	274	1/3/4/129
70	275	1/3/4/129
71	268	1/3/4/130
72	272	1/3/4/130
73	276	1/3/4/130
74	277	1/3/4/131
75	128	1/4/1/132
76	129	1/4/1/133
77	130	1/4/1/133
78	132	1/4/1/133
79	133	1/4/1/133
80	134	1/4/1/133
81	135	1/4/1/133

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
82	136	1/4/1/133
83	137	1/4/2/134
84	138	1/4/2/134
85	139	1/4/3/140
86	140	1/4/3/140
87	141	1/4/3/140
88	142	1/4/3/141
89	143	1/4/3/141
90	144	1/4/3/141
91	148	1/4/3/141
92	149	1/4/3/142
93	153	1/4/3/142
94	154	1/4/3/142
95	155	1/4/3/142
96	156	1/4/3/142
97	157	1/4/3/142
98	150	1/4/4/143
99	151	1/4/4/143
100	158	1/4/4/143
101	159	1/4/4/145
102	160	1/4/4/145
103	161	1/4/4/145
104	162	1/4/4/145
105	163	1/4/4/145
106	131	1/5/2/156
107	263	1/5/6/173

आचारांग निर्युक्ति

108	213	206
109	152	234/128

आचारांगवृत्ति [शीलांक]

110	147	1/190
111	146	2/190
112	145	3/190

आगमीय सूक्तावली

113	208	2/27

आपस्तम्बस्मृति

114	56	10/11
115	57	10/11

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि

आवश्यक – कथा

116	17	1

आवश्यक निर्युक्ति

117	291	1/92
118	124	1/566
119	183	1/790
120	179	1/801
121	180	1/803
122	181	1/814
123	41	1546
124	43	1546
125	42	6/1566

आवश्यक निर्युक्ति भाष्य

126	182	1/149

उत्तराध्ययन सूत्र

127	278	2/8
128	1	4/3
129	2	4/4
130	4	4/5
131	3	4/6
132	6	4/6
133	5	4/7
134	7	4/8
135	8	4/8
136	14	4/10
137	15	4/10
138	9	4/11
139	10	4/12
140	11	4/12
141	12	4/12
142	13	4/12
143	16	4/13
144	191	5/23
145	308	11/38
146	306	12/26
147	304	12/31
148	305	12/31
149	310	12/37
150	309	12/40
151	307	12/41

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
152	313	12/42
153	312	12/43
154	311	12/44
155	314	12/46-47
156	40	15/10
157	21	18/11
158	25	18/11
159	22	18/12
160	26	18/13
161	27	18/14
162	23	18/15
163	24	18/17
164	28	18/25
165	29	18/25
166	30	18/26
167	31	18/30
168	32	18/33
169	34	18/33
170	33	18/43
171	35	18/52
172	36	18/53
173	37	18/54
174	109	21/9
175	117	21/12
176	116	21/13
177	118	21/13
178	120	21/13
179	111	21/14
180	112	21/14
181	119	21/14
182	113	21/15
183	114	21/15
184	110	21/16
185	121	21/18
186	122	21/19
187	115	21/20
188	123	21/21
189	187	26/10
190	125	28/16
191	50	29/3
192	184	29/10
193	188	29/12

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
194	66	29/20
195	290	29/26
196	20	29/28
	उपदेशमाला	
197	299	337
198	300	338
199	302	338
200	301	339
	औपपातिक सूत्र	
201	206	13
202	205	16-17
203	207	21
	कल्पसुबोधिका टीका	
204	70	1/1
	गच्छाचार पयन्ना सटीक	
205	282	1/18
	चाणक्य नीति दर्पण	
206	315	12/8
	चंदविज्जा पयन्ना	
207	64	91
	जैनसिद्धान्तदीपिका	
208	69	9/16
	तत्त्वार्थाधिगम सूत्र	
209	38	5/29
	तत्त्वार्थ भाष्य	
210	164	1/2
	दशवैकालिक सूत्र	
211	167	2/1
212	170	2/5
213	171	2/5
214	168	2/7
215	169	2/9
	दशवैकालिक टीका	
216	200	1/5

क्रमांक	सूक्ति कम	अ./उ./गाथादि
	[illegible]पयन्ना मूल सटीक	
217	68	सटीक
	द्वात्रिंशत् – द्वात्रिंशिका	
218	201	26/21
219	60	32/3
	धर्मबिन्दु सटीक	
220	202	15
221	203	16
	धर्मरत्न प्रकरण	
222	204	1/10/175
223	209	3/7
224	63	44
225	292	178
	धर्मसंग्रह सटीक	
226	196	2
227	197	2
228	198	2
229	126	2/31
230	190	2/64
231	189	2/204
232	192	2/206
233	195	2/241
234	194	2/242
235	199	2/242
	निशीथ चूर्णि	
236	62	19
	निशीथ भाष्य	
237	284	5245
	नंदी सूत्र	
238	289	45
	पातञ्जल योगदर्शन	
239	65	2/44
	पंचवस्तुक सटीक	
240	48	4
241	127	4/1028

क्रमांक	सूक्ति कम	अ./उ./गाथादि
	पंचाशक सटीक	
242	176	11/5
	प्रशमरति प्रकरण	
243		283 71
	बृहत्कल्पभाष्य	
244	281	350
245	44	4401
246	45	4410
	बृहदावश्यकभाष्य	
247	280	347
248	47	1319
	भगवती सूत्र	
249	85	2/5/26
250	193	7/2/36(2)
251	317	9/34/5(2)
252	323	9/34/6(2)
253	67	25/7/2/236
	भगवद् गीता	
254	285	4/7
255	88	5/18
	महाभारत	
256	316	महाभारत
257	318	महाभारत
258	321	महाभारत
259	322	महाभारत
260	303	महाभारत शान्तिपर्व
261	54	महाभारत-आदिपर्व-74/102
	योगबिन्दु	
262	72	126
263	73	127-130
264	166	257
	योगशतक	
265	165	14

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
	योगशास्त्र	
266	59	2/61
	विशेषावश्यक भाष्य	
267	288	520
268	286	544
269	174	954
270	279	1443
271	172	2690
	सूत्रकृतांग सूत्र सटीक	
272	296	1/2/2/11
273	173	1/2/2/17
274	91	1/10/2
275	92	1/10/3
276	98	1/10/3
277	89	1/10/4
278	90	1/10/4
279	94	1/10/5
280	97	1/10/6
281	93	1/10/7
282	96	1/10/7
283	95	1/10/10
284	103	1/10/13
285	100	1/10/15
286	101	1/10/17
287	104	1/10/17
288	99	1/10/19
289	102	1/10/19
290	105	1/10/20
291	106	1/10/21
292	108	1/10/21
293	107	1/10/22
294	210	1/14/1
295	211	1/14/1
296	212	1/14/1
297	52	1/15/3
298	46	1/15/18
	सूत्रकृतांग चूर्णि	
299	177	1/2/2

क्रमांक	सूक्ति क्रम	अ./उ./गाथादि
	स्थानांग सूत्र	
300	51	4/4/1/254
301	18	4/4/2/310
302	297	4/4/3/317
303	298	4/4/3/317
304	86	4/4/3/322
305	87	4/4/3/322
306	295	4/4/3/325
307	49	4/4/3/353(4)
308	19	5/5/3/428
309	294	7/7/559
	स्थानांग टीका	
310	61	5/3/465
	स्याद्वाद मंजरी	
311	319	पृ. 94
	हारिभद्रीयाष्टक सटीक	
312	185	29/1
313	186	29/1
314	320	4/3
	हितोपदेश	
315	74	1/24
316	293	4/87
317	71	4/90
	हिंगुल प्रकरण	
318	39	1/14
	ज्ञानसार	
319	76	6/3
320	75	6/4
321	78	6/5
322	77	6/7
323	79	6/8

पञ्चम परिशिष्ट
'सूक्ति-सुधारस' में प्रयुक्त संदर्भ-ग्रंथ सूची

पञ्चम परिशिष्ट

१. अनुयोगद्वार सूत्र
२. आचारांग सूत्र
३. आचारांग निर्युक्ति
४. आचारांग वृत्ति
५. आचारांग चूर्णि
६. आवश्यक कथा
७. आवश्यक निर्युक्ति
८. आवश्यक निर्युक्ति भाष्य
९. आवश्यक मलयगिरि
१०. आगमीय सूक्तावली
११. आपस्तंबस्मृति
१२. उत्तराध्ययन सूत्र
१३. उपदेशमाला
१४. औपपातिक सूत्र
१५. कल्पसुबोधिका टीका
१६. गच्छाचारपयन्ना
१७. चाणक्यनीति दर्पण
१८. चंदविज्झा पयन्ना
१९. जैनसिद्धान्तदीपिका
२०. तत्त्वार्थाधिगम सूत्र
२१. तत्त्वार्थभाष्य
२२. दशवैकालिक सूत्र
२३. दशवैकालिक टीका
२४. दशपयन्ना मूल सटीक
२५. द्वात्रिंशत् द्वात्रिंशिका
२६. धर्मबिन्दु सटीक
२७. धर्मरत्न प्रकरण
२८. धर्मरत्न प्रकरण सटीक
२९. धर्मसंग्रह सटीक
३०. निशीथ चूर्णि

३१. निशीथ भाष्य
३२. नंदी सूत्र
३३. पातञ्जल योगदर्शन
३४. पंचवस्तुक सटीक
३५. पंचाशक टीका
३६. प्रशमरति प्रकरण
३७. बृहत्कल्प भाष्य
३८. बृहदावश्यक भाष्य
३९. भगवती सूत्र
४०. भगवद्गीता
४१. महाभारत
४२. मूलाराधना
४३. योगबिन्दु
४४. योगशतक
४५. योगशास्त्र
४६. विशेषावश्यक भाष्य
४७. विक्रमचरित्र
४८. सूत्रकृतांग सूत्र
५९. सूत्रकृतांग चूर्णि
५०. स्थानांग सूत्र
५१. स्थानांग टीका
५२. स्याद्वादमंजरी सटीक
५३. हारिभद्रीयाष्टक
५४. हितोपदेश
५५. हिंगुल प्रकरण
५६. ज्ञानसार

विश्वपूज्य प्रणीत
सम्पूर्ण वाङ्मय

6

विश्वपूज्य प्रणीत सम्पूर्ण वाङ्मय

अभिधान राजेन्द्र कोष [1 से 7 भाग]
अमरकोष (मूल)
अघट कुँवर चौपाई
अष्टाध्यायी
अष्टाह्निका व्याख्यान भाषान्तर
अक्षय तृतीया कथा (संस्कृत)
आवश्यक सूत्रावचूरी टब्बार्थ
उत्तमकुमारोपंन्यास (संस्कृत)
उपदेश रत्नसार गद्य (संस्कृत)
उपदेशमाला (भाषोपदेश)
उपधानविधि
उपयोगी चौवीस प्रकरण (बोल)
उपासकदशाङ्गसूत्र भाषान्तर (बालावबोध)
एक सौ आठ बोल का थोकड़ा
कथासंग्रह पञ्चाख्यानसार
कमलप्रभा शुद्ध रहस्य
कर्तुरीप्सिततमं कर्म (श्लोक व्याख्या)
करणकाम धेनुसारिणी
कल्पसूत्र बालावबोध (सविस्तर)
कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी
कल्याणमन्दिर स्तोत्रवृत्ति (त्रिपाठ)
कल्याण (मन्दिर) स्तोत्र प्रक्रिया टीका
काव्यप्रकाशमूल
कुवलयानन्दकारिका
केसरिया स्तवन
खापरिया तस्कर प्रबन्ध (पद्य)
गच्छाचार पयन्नावृत्ति भाषान्तर
गतिषट्त्रया - सारिणी

ग्रहलाघव
चार (चतुः) कर्मग्रन्थ - अक्षरार्थ
चन्द्रिका - धातुपाठ तरंग (पद्य)
चन्द्रिका व्याकरण (2 वृत्ति)
चैत्यवन्दन चौवीसी
चौमासी देववन्दन विधि
चौवीस जिनस्तुति
चौवीस स्तवन
ज्येष्ठस्थित्यादेशपट्टकम्
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति बीजक (सूची)
जिनोपदेश मंजरी
तत्त्वविवेक
तर्कसंग्रह फक्किका
तेरहपंथी प्रश्नोत्तर विचार
द्वाषष्टिमार्गणा - यन्त्रावली
दशाश्रुतस्कन्ध सूत्रचूर्णी
दीपावली (दिवाली) कल्पसार (गद्य)
दीपमालिका देववन्दन
दीपमालिका कथा (गद्य)
देववंदनमाला
धनसार - अघटकुमार चौपाई
ध्रष्टर चौपाई
धातुपाठ श्लोकबद्ध
धातुतरंग (पद्य)
नवपद ओली देववंदन विधि
नवपद पूजा
नवपद पूजा तथा प्रश्नोत्तर
नीतिशिक्षा द्वय पच्चीसी
पंचसप्तति शतस्थान चतुष्पदी
पंचाख्यान कथासार
पञ्चकल्याणक पूजा

पञ्चमी देववन्दन विधि
पर्यूषणाष्टाह्निका - व्याख्यान भाषान्तर
पाइय सद्दम्बुही कोश (प्राकृत)
पुण्डरीकाध्ययन सज्झाय
प्रक्रिया कौमुदी
प्रभुस्तवन - सुधाकर
प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकार
प्रश्नोत्तर पुष्पवाटिका
प्रश्नोत्तर मालिका
प्रज्ञापनोपाङ्गसूत्र सटीक (त्रिपाठ)
प्राकृत व्याकरण विवृत्ति
प्राकृत व्याकरण (व्याकृति) टीका
प्राकृत शब्द रूपावली
बारेव्रत संक्षिप्त टीप
बृहत्संग्रहणीय सूत्र चित्र (टब्बार्थ)
भक्तामर स्तोत्र टीका (पंचपाठ)
भक्तामर (सान्वय - टब्बार्थ)
भयहरण स्तोत्र वृत्ति
भर्त्तरीशतकत्रय
महावीर पंचकल्याणक पूजा
महानिशीथ सूत्र मूल (पंचमाध्ययन)
मर्यादापट्टक
मुनिपति (राजर्षि) चौपाई
रसमञ्जरी काव्य
राजेन्द्र सूर्योदय
लघु संघयणी (मूल)
ललित विस्तरा
वर्णमाला (पाँच कक्का)
वाक्य-प्रकाश
बासठ मार्गणा विचार
विचार - प्रकरण

विहरमाण जिन चतुष्पदी
स्तुति प्रभाकर
स्वरोदयज्ञान - यंत्रावली
सकलैश्वर्य स्तोत्र सटीक
सद्य गाहापयरण (सूक्ति-संग्रह)
सप्ततिशत स्थान-यंत्र
सर्वसंग्रह प्रकरण (प्राकृत गाथा बद्ध)
साधु वैराग्याचार सज्झाय
सारस्वत व्याकरण (3 वृत्ति) भाषा टीका
सारस्वत व्याकरण स्तुबुकार्थ (1 वृत्ति)
सिद्धचक्र पूजा
सिद्धाचल नव्वाणुं यात्रा देववंदन विधि
सिद्धान्त प्रकाश (खण्डनात्मक)
सिद्धान्तसार सागर (बोल-संग्रह)
सिद्धहैम प्राकृत टीका
सिंदूरप्रकर सटीक
सेनप्रश्न बीजक
शंकोद्धार प्रशस्ति व्याख्या
षड् द्रव्य विचार
षड्द्रव्य चर्चा
षडावश्यक अक्षरार्थ
शब्दकौमुदी (श्लोक)
'शब्दाम्बुधि' कोश
शांतिनाथ स्तवन
हीर प्रश्नोत्तर बीजक
हैमलघुप्रक्रिया (व्यंजन संधि)
होलिका प्रबन्ध (गद्य)
होलिका व्याख्यान
त्रैलोक्य दीपिका - यंत्रावली ।

लेखिका द्वय की
महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

लेखिकाद्वय की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ

१. आचाराङ्ग का नीतिशास्त्रीय अध्ययन (शोध प्रबन्ध)
लेखिका : डॉ. प्रियदर्शनाश्री, एम. ए. पीएच.डी.

२. आनन्दघन का रहस्यवाद (शोध प्रबन्ध)
लेखिका : डॉ. सुदर्शनाश्री, एम. ए., पीएच.डी.

३. अभिधान राजेन्द्र कोष में, सूक्ति-सुधारस (प्रथम खण्ड)

४. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति सुधारस (द्वितीय खण्ड)

५. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (तृतीय खण्ड)

६. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (चतुर्थ खण्ड)

७. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (पंचम खण्ड)

८. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (षष्ठम खण्ड)

९. अभिधान राजेन्द्रकोष में, सूक्ति-सुधारस (सप्तम खण्ड)

१०. 'विश्वपूज्य' : (श्रीमद्राजेन्द्रसूरि : जीवन-सौरभ) (अष्टम खण्ड)

११. अभिधान राजेन्द्र कोष में, जैनदर्शन वाटिका (नवम खण्ड)

१२. अभिधान राजेन्द्र कोष में, कथा-कुसुम (दशम खण्ड)

१३. राजेन्द्र सूक्ति नवनीत (एकादशम खण्ड)

१४. जिन खोजा तिन पाइयाँ (प्रथम महापुष्प)

१५. जीवन की मुस्कान (द्वितीय महापुष्प)

१६. सुगन्धित-सुमन (FRAGRANT-FLOWERS) (तृतीय महापुष्प)

प्राप्ति स्थान :

श्री मदनराजजी जैन
द्वारा - शा. देवीचन्दजी छगनलालजी
आधुनिक वस्त्र विक्रेता, सदर बाजार,
पो. भीनमाल-३४३०२९
जिला-जालोर (राजस्थान)
☎ (02969) 20132

